विज्ञान भैरव तंत्र ओशो part 2A

तंत्र-सूत्र—विधि-24 (ओशो)

केंद्रित होने की बारहवीं विधि:

विज्ञान भैरव तंत्र–शिव (जब किसी व्यक्ति के पक्ष विपक्ष पर भाव उठे.....

''जब किसी व्यक्ति के पक्ष या विपक्ष में कोई भाव उठे तो उसे उस व्यक्ति पर मत आरोपित करे।''

अगर हमें किसी के विरूद्ध घृणा अनुभव हो या किसी के लिए प्रेम अनुभव हो तो हम क्या करते है? हम उस घृणा या प्रेम को उस व्यक्ति पर आरोपित कर देते है। अगर तुम मेरे प्रति घृणा अनुभव करते हो तो उस घृणा के ही कारण तुम अपने को बिलकुल भूल जाते हो। और मैं तुम्हारा एक मात्र लक्ष्य या विषय बन जाता हूं। वैसे ही जब तुम मुझे प्रेम करते हो तो भी तुम अपने को बिलकुल ही भूल जाते हो। और मुझे अपना एक मात्र विषय बना लेते हो। तुम अपनी घृणा को प्रेम को या जो भी भाव हो, उसे मुझे पर प्रक्षेपित कर देते हो। उस दशा में तुम आंतरिक केंद्र को भूल जाते हो। और दूसरे को अपना केंद्र बना लेते हो।

यह सूत्र कहता है। कि जब किसी के प्रति घृणा, प्रेम या कोई और भाव पक्ष या विपक्ष में पैदा हो तो उसको, उस भाव को उस व्यक्ति पर आरोपित मत करो। बल्कि स्मरण रखो कि उस भाव का स्त्रोत तुम स्वयं हो।

मैं तुम्हें प्रेम करता हूं। इसमें सामान्य भाव यह है कि तुम मेरे प्रेम के स्त्रोत हो। लेकिन यह हकीकत नहीं है। मैं ही स्त्रोत हूं, तुम तो महज वह पर्दा हो जिस पर मैं अपने प्रेम को प्रक्षेपित करता हूं। तुम मात्र पर्दा हो। मैं अपना प्रेम तुम पर प्रक्षेपित करता हूं। और मैं कहता हूं कि तुम मेरे प्रेम के स्त्रोत हो। लेकिन यह तथ्य नहीं है। यह झूठ है। यह मेरी ही प्रेम की ऊर्जा है जिसे मैं तुम पर प्रक्षेपित कर रहा हूं।

इस प्रेम की ऊर्जा की प्रभा में पड़ कर तुम सुंदर हो जाते हो। हो सकता है। किसी के लिए तुम सुंदर न होओ। हो सकता है कि किसी के लिए तुम बिलकुल कुरूप और विकर्षण से भरे होओ। ऐसा क्यों? अगर तुम ही प्रेम के स्त्रोत हो तो प्रत्येक व्यक्ति को तुम्हारे प्रति प्रेमपूर्ण होना चाहिए।

लेकिन तुम स्त्रोत नहीं हो। मैं तुम पर प्रेम आरोपित करता हूं तो तुम सुंदर हो जाते हो। कोई दूसरा व्यक्ति तुम पर घृणा आरोपित करता है और तुम कुरूप हो जाते हो। और हो सकता है कोई तीसरा व्यक्ति तुम्हारे प्रति बिलकुल उदासीन हो, तटस्थ हो। उसने तुम्हें देखा तक न हो। आखिर हो क्या रहा है? हम अपने-अपने भाव दूसरों पर फैला रहे है।

यही कारण है कि सुहागरात में चंद्रमा तुम्हें सुंदर, चमत्कारपूर्ण और अपूर्व दिखाई देता है। उस समय सारा संसार तुम्हें अपूर्व मालूम देता है। और हो सकता है उसी रात तुम्हारे पड़ोसी के लिए अद्भुत रात्रि अस्तित्व में न हो। और अगर उसका बच्चा मर

गया हो। तो वही चाँद उसके लिए उदास, दुःखी और असहनीय मालूम पड़ेगा। और वही चाँद तुम्हारे लिए इतना मोहक है, मादक है और तुम्हें पागल किए दे रहा है। क्यों? क्या चंद्रमा स्त्रोत है, आधार है? यह चंद्रमा केवल पर्दा है जिस पर तुम अपने को फैला रहे हो। प्रक्षेपित कर रहे हो।

यह सूत्र कहता है: ''जब किसी व्यक्ति के पक्ष या विपक्ष में कोई भाव उठे तो उसे उस व्यक्ति पर मत आरोपित करो, बल्कि केंद्रित रहो।''

यहां व्यक्ति की जगह कोई वस्तु भी हो सकती है। विषय के रूप में कुछ भी काम देगा। तुम सदा केंद्रित रहो। याद रहे कि तुम स्त्रोत हो और विषय की और गति करने की बजाएं स्त्रोत की और गति करो। जब घृणा का भाव उठे तो घृणा के विषय पर जाने की बजाएं उस बिंदु पर जाना बेहतर है जहां पर घृणा आ रही है। उस व्यक्ति को मत खोजों जो इस घृणा का विषय है। लक्ष्य है; उस केंद्र को खोजों जहां से घृणा उठ रही है। केंद्र की तरफ चलो, भीतर जाओ अपनी घृणा या प्रेम या जो भी भाव हो उसे केंद्र की और स्त्रोत की और, उदगम की और यात्रा का साधन बनाओ। उदगम पर जाओ, और वहां केंद्रित रहो।

इसे प्रयोग करो। यह बहुत ही मनोवैज्ञानिक विधि है। किसी ने तुम्हारा अपमान किया और तुम क्रोधित हो गए, ज्वरग्रस्त हो गए। अभी तुम्हारा यह क्रोध को उस आदमी प्रवाहित हो रहा है। जिसने तुम्हें अपमानित किया। तुम अपने पूरे क्रोध को उस आदमी पर प्रक्षेपित हो रहा है। जिसने तुम्हें अपमानित किया, अगर उसने तुम्हें अपमानित किया तो सच में क्या किया? उसने केवल तुम्हें थोड़ा कुरेदा। उसने तुम्हारे क्रोध को उभरने में थोड़ा सहायता कर दी। लेकिन यह क्रोध तुम्हारा है।

वह व्यक्ति बुद्ध के पास जाए और उन्हें अपमानित करे तो वह उनमें कोई क्रोध पैदा नहीं कर सकेगा। वह अगर जीसस के पास जाए तो जीसस उसे अपना दूसर गाल भी हाजिर कर देंगे। और बोधिधर्म के पाए जाए तो वह अट्टहास कर उठेंगे। यह व्यक्ति पर निर्भर है।

इसलिए दूसरा व्यक्ति स्त्रोत नहीं है। स्त्रोत सदा तुम्हारे भीतर है। दूसरा सिर्फ स्त्रोत पर चोट कर रहा है। लेकिन अगर तुम्हारे भीतर क्रोध नहीं है तो क्रोध बाहर नहीं आएगा। यदि तुम बुद्ध को चोट करो तो करूणा आएगी। क्योंकि वहां क्रोध नहीं है।

एक सूखे कुएं में बाल्टी डालों तो कुछ भी हाथ नहीं आता। पानी वाले कुएं में बाल्टी डालों और वह पानी से भरकर बाहर आती है। लेकिन पानी कुएं में है। कुआं स्त्रोत है। बाल्टी तो पानी को बाहर लाने का निमित मात्र है।

जो आदमी तुम्हें अपमानित करता है वह बाल्टी का काम करता है। वह तुम्हारे भीतर से तुम्हारे क्रोध, घृणा या किसी भी आग को बाहर ले आता है। तो स्मरण रहे। तुम स्त्रोत हो।

इस विधि के लिए विशेष रूप से इस बात को ध्यान में रख लो कि दूसरों पर तुम जो भी भाव प्रक्षेपित करते हो उसका स्त्रोत सदा तुम्हारे भीतर है। इसलिए जब भी कोई भाव पक्ष या विपक्ष में उठे तो तुरंत भीतर प्रवेश करो और उस स्त्रोत के पास पहुंचो जहां से यह भाव उठ रहा है। स्त्रोत पर केंद्रित रहो, विषय की चिंता ही छोड़ दो। किसी ने तुम्हें तुम्हारे क्रोध को जानने का मोका दिया है। इसके लिए उसे तुरंत धन्यवाद दो और उसे भूल जाओ। फिर आंखें बंद कर लो और अपने भीतर सरक जाओ। और उस स्त्रोत पर ध्यान दो जहां से यह प्रेम या क्रोध का भाव उठ रहा है।

भीतर गति करने पर तुम्हें वह स्त्रोत मिल जाएगा। क्योंकि ये भाव उसी स्त्रोत से आते है। घृणा हो या प्रेम, सब तुम्हारे स्त्रोत से आते है। इस स्त्रोत के पास उस समय पहुंचना आसान है जब तुम क्रोध या प्रेम या घृणा सक्रिय रूप से अनुभव करते हो।

इस क्षण में भीतर प्रवेश करना आसान होता है। जब तार गर्म है तो उसे पकड़कर भीतर जाना आसान होता है। और भीतर जाकर जब तुम एक शीतल बिंदू पर पहुंचोगे तो अचानक एक भिन्न आयाम, एक दूसरा ही संसार सामने खुलने लगता है।

इसलिए क्रोध, घृणा या प्रेम जो भी हो उसका उपयोग अंतर्यात्रा के लिए करो। हम सदा दूसरों की तरफ गति करने में इन भावों का उपयोग करते हे। और जब अपने भाव आरोपित करने के लिए हमें कोई नहीं मिलता तो बड़ी निराशा लगती है। तब हम अपने भावों को निर्जीव वस्तुओं पर भी आरोपित करने लगते है। मैंने लोग देखे है जो अपने जूतों पर क्रोध करते है। और क्रोध से उन्हें फेंकते है। वे क्या कर रहे है? मैंने लोगों को देखा है जो घर के दरवाजे पर क्रोध करते है, क्रोध में उसे खोलते है, उसे गालियां तक देते है। वे क्या कर रहे है?

इस प्रसंग में मैं एक झेन अंतदृष्टि की चर्चा से अपनी बात समाप्त करूं। एक बहुत बड़े झेन सदगुरू लिंची कहा करते थे:

मैं जब युवा था तो मुझे नौका-विहार का बहुत शौक था। मेरे पास एक छोटी सी नाव थी और उसे लेकर में अक्सर अकेला झील की सैर करता था। मैं घंटों झील में रहता था।

एक दिन ऐसा हुआ कि मैं अपनी नाव में आँख बंद कर सुंदर रात पर ध्यान कर रहा था। तभी एक खाली नाव उलटी दिशा में आई और मेरी नाव से टकरा गई। मेरी आंखे बंद थी। इसलिए मैंने मन में सोचा कि किसी व्यक्ति ने अपनी नाव मेरी नाव से टकरा दी है। और मुझे क्रोध आ गया।

मैंने आंखें खोली और मैं उस व्यक्ति को क्रोध में कुछ कहने ही जा रहा था कि मैंने देखा कि दूसरी नाव खाली है। अब मुझे कुछ करने का कोई उपाय न रहा। किस पर यह क्रोध प्रकट करूं? नाव तो खाली है। और वह नाव धार के साथ बहकर आई थी। और मेरी नाव से टकरा गई थी। अब मेरे लिए कुछ भी करने को न था। एक खाली नाव पर क्रोध उतारने की कोई संभावना न थी। तब फिर एक ही उपाय बाकी रहा। मैंने आंखें बंद कर ली। और अपने क्रोध को पकड़ कर उलटी दिशा में बहने लगा। और में पहूंच गया अपने केंद्र पर। वह खाली नाव में आत्म ज्ञान का कारण बन गई। उस मौन रात में मैं आपने भीतर सरक गया। और क्रोध मेरी सवारी बन गया। और खाली नाव मेरी गुरु हो गई।

और फिर लिंची ने कहा, अब जब कोई आदमी मेरा अपमान करता है तो मैं हंसता हूं और कहता हूं कि यह नाव भी खाली है। मैं आंखें बंद करता हूं और अपने भीतर चला जाता हूं।

इस विधि को प्रयोग करो। यह तुम्हारे लिए चमत्कार कर सकती है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र

(तंत्र-सूत्र—भाग-1)

प्रवचन-15

तंत्र-सूत्र— विधि—25 (ओशो)

अचानक रूकने की कुछ विधियां:

तंत्र-सूत्र— विधि—25
अचानक रूकने की कुछ विधियां:

पहली विधि:

''जैसे ही कुछ करने की वृति हो , रूक जाओ।''
ये सारी विधियां मध्य में रूकने से संबंधित है। जार्ज गुरजिएफ ने पश्चिम में इन विधियों को प्रचलित किया था, लेकिन उसे विज्ञान भैरव तंत्र का पता नहीं था। उसने ये विधियां तिब्बत में बौद्ध लामाओं से सीखी थी। पश्चिम में उसने इन विधियों पर काम किया और अनेक साधक इन विधियों के द्वारा केंद्र को उपलब्ध हो गए। वह उन्हें स्टाप एक्सरसाइज, रूक जाने का प्रयोग कहता था। लेकिन इन प्रयोगों का स्त्रोत विज्ञान भैरव तंत्र है।
बौद्धों ने भी विज्ञान भैरव तंत्र से ही सीखा था। सूफियों में भी ऐसे प्रयोग चलते है। सबने विज्ञान भैरव से ही लिया है। दुनिया में ऐसी जो भी विधियां चलती है। उन सबका स्त्रोत-ग्रंथ यही है।

गुरूजिएफ बहुत सरल ढंग से इसका प्रयोग करता था। उदाहरण के लिए, वह अपने शिष्यों को नाचने के लिए कहता था। बीस लोगों का समूह नाच रहा है। नाच के बीच ही वह अचानक जोर से कहता, ''स्टॉप।'' और जब गुरूजिएफ रूकने को कहता तो उन्हें तुरंत और समग्ररत:: रूकना पड़ता था। जब और जहां रूकने की आज्ञा होती तभी और वहां ही रूकना अनिवार्य था। उसमें जरा भी हेर-फेर या समायोजन की गुंजाइश नहीं थी। अगर तुम्हारा एक पैर जमीन से ऊपर उठा था और एक पैर पर तुम खड़े थे तो तुम्हें उसी मुद्रा में जम जाना पड़ता।

यह बात अलग है कि तुम गिर जाओ, लेकिन इस गिरने में कोई सहयोग नहीं देना था। अगर तुम्हारी आंखें खुली थी तो उन्हें खुली रहने देना था। अब तुम उन्हें बंद नही कर सकते। यह बात दूसरी है कि वे अपने आप ही बंद हो जाएं। जहां तक तुम्हारा संबंध है तुम्हें सचेतन रूप से ज्यों का त्यों रूक जाना है। तुम्हें पत्थर की मूर्ति जैसा हो जाना है।

और इसके अद्भुत नतीजे आते थे। क्योंकि जब तुम सक्रिय होते हो, नाचते होते हो गतिमान होते हो। और अचानक बीच में रूक जाते हो, तो जो उससे एक अंतराल पैदा होता है। सभी क्रिया का अचानक बंद होना तुम्हें दो भागों में बांट देता है। तुम्हें तुम्हारे शरीर से अलग कर देता है। अभी तुम और तुम्हारा शरीर दोनों गतिमान थे। तुम अचानक रूक जाते हो। शरीर इस आकस्मिक ठहराव के लिए तैयार नहीं है। तुम्हें अचानक लगता है कि शरीर अभी भी कुछ करना चाहता है। लेकिन तुम रूक जाते हो। इससे एक अंतराल पैदा हो गया है। तुम्हें लगता है, तुम्हारा शरीर तुमसे दूर है, बहुत दूर है, जिसमे अभी क्रिया का संवेग भरा है। लेकिन क्योंकि तुम ठहर गए थे और तुम अपने शरीर के साथ, शरीर के संवेग के साथ सहयोग नहीं कर रहे हो, इसलिए तुम उससे पृथक हो जाते हो।

लेकिन तुम अपने को धोखा भी दे सकते हो। जरा सा सहयोग, और अंतराल घटित नहीं होगा। उदाहरण के लिए तुम कुछ असुविधा अनुभव कर रहे हो। तभी गुरु ने कहा कि रूक जाओ। तुम सुन भी लेते हो, लेकिन अपनी सुविधा बनाकर रुकते हो। इतने से ही सब बात बिगड़ गई, अब कुछ नहीं होगा। तब तुमने को धोखा दिया—गुरु को नहीं। तब तुम चूक गए। तब विधि का पूरा महत्व ही नष्ट हो गया।

जब अचानक रूकने की आवाज सुनाई पड़े, तत्क्षण तुम्हें रूक जाना है। अब कुछ भी नहीं करना है। हो सकता है कि जिस मुद्रा में तुम थे वह असुविधाजनक थी। तुम्हें डर था कि तुम गिर जाओगे, तुम्हारी हड्डी टूट जाएगी। लेकिन कुछ भी हो तुम्हें चिंता नहीं लेनी है। यदि तुमने चिंता ली तो अपने को ही धोखा दोगे।

यह जो अचानक मृतवत होना है यह अंतराल पैदा करता है। रूकना तो शरीर के तल पर होता है, लेकिन रूकने वाला केंद्र है। परिधि और केंद्र अलग-अलग है। एकाएक रूकने की घटना में तुम पहली बार अपने को अनुभव करोगे। पहली बार केंद्र को महसूस करोगे।

गुरूजिएफ ने इस विधि के जरिए अनेक लोगो की मदद की। इस विधि के कई आयाम है, यह विधि कई ढंग से इस्तेमाल होती है। लेकिन पहल इसकी संरचना को समझने की चेष्टा करो। संरचना सरल है। तुम कोई काम करते हो। जब तुम काम में होते हो तो तुम अपने को पूरी तरह भूल जाते हो। तब कृत्य तुम्हारे अवधान का केंद्र हो जाता है।

समझो की कोई व्यक्ति मर गया है और तुम उसके लिए चीख-चिल्ला रहे हो, आंसू बहा रहे हो। अब तुम अपने को पूरी तरह भूल गये हो। मरने वाला केंद्र हो गये हो। और उसके चारों और रोने की, आंसू की, शोक की क्रिया घट रही है। अगर मैं एकाएक कहूं कि रूक जाओ और तुम तरह रूक जाओ तो तुम अपने शरीर और कर्म के जगत से सर्वथा अलग हो जाओगे। जब तुम काम में होते हो तो तुम उसमे खो जाते हो। अचानक ठहरना तुम्हारे संतुलन को हिला देता है। वह तुम्हें कर्मों के बाहर कर देता है। और वही चीज तुम्हें तुम्हारे केंद्र पर पहुंचा देती है।

सामान्यत: हम एक काम से दूसरे काम में गति करते रहते है। अ से ब में, ब से स में। ज्यों ही तुम सुबह जागते हो, कर्म का जगत शुरू हो जाता है। अब तुम सारा दिन सक्रिय रहोगे। तुम अनेक बार काम बदलोगे, लेकिन एक क्षण को भी निष्क्रिय नहीं रहोगे। निष्क्रिय रहना कठिन है। अगर तुम निष्क्रिय रहने की कोशिश करोगे। तो वही सक्रियता बन जाएगी।

अनेक लोग निष्क्रिय होने की चेष्टा करते है। वे बुद्ध की तरह बैठ जाते है और निष्क्रिय होने की चेष्टा करते है। लेकिन निष्क्रिय होने की चेष्टा कैसे हो सकती है। चेष्टा ही सक्रियता बन जाएगी। तुम निष्क्रियता को भी सक्रियता बना लोगे। तुम अपने को जबरदस्ती शांत बना ले सकते हो। लेकिन वह जबरदस्ती खुद मन की क्रिया होगी।

यही कारण है कि अनेक लोग ध्यान में जाने की चेष्टा करते है। लेकिन कही नहीं पहुंचते है। कारण है कि उनका ध्यान भी एक सक्रियता है। एक क्रिया है। क्रिया बदली जा सकती है। तुम एक साधारण गीत गा रहे थे, उसे छोड़कर भजन गा सकते हो। पहल तेज गा रहे थे, अब आहिस्ता से गा सकते हो। लेकिन दोनों क्रियाएं है। तुम दौड़ रहे हो, तुम चल रहे हो। तुम पढ़ रहे हो। सब कुछ सक्रियता है। तुम प्रार्थना करते हो—वह भी सक्रियता है। तुम एक क्रिया से दूसरी क्रिया में गति करते रहते हो। ऐसे रात सोने तक कर्म जारी रहता है।

और सोते-सोते भी तुम सक्रिय रहते हो। क्रिया रुकती नहीं है। यही कारण है कि स्वप्न धटित होता है। स्वप्न उसी सक्रियता का विस्तार है। नींद में भी क्रिया जारी रहती है। अब तुम्हारा अचेतन सक्रिय है—कुछ करता है। चीजें बटोरता है, कुछ गँवाता है। कही जाता है। स्वप्न का अर्थ है कि थक कर शरीर सो गया है। लेकिन क्रिया किसी तल पर जारी है।

केवल कभी-कभी और वह भी कुछ क्षणों के लिए—आधुनिक मनुष्य के लिए यह भी दुर्लभ है—स्वप्न बंद होता है। और तुम गाढ़ी नींद में होते हो। लेकिन यह निष्क्रियता अचेतन है। तुम अब चेतन नहीं हो, गहरी नींद में हो, सक्रियता बंद हो गई है। अब कोई परिधि नहीं है; अब तुम केंद्र पर हो, लेकिन सर्वथा थके हुए—अचेतन, मृतवत।

यही कारण है कि हिंदू सदा कहते है कि सुषुप्ति और समाधि समान है। उनमें एक ही भेद है; लेकिन यह भेद बड़ा है। भेद बोध का है। सुषुप्ति में स्पप्नरहित नींद में तुम अपने केंद्र पर होते हो; लेकिन अचेतन। समाधि में भी, जो ध्यान की परम अवस्था है, तुम केंद्र पर होते हो। लेकिन चेतन। यही भेद है। क्योंकि बेहोश होकर केंद्र पर होने का कोई अर्थ नहीं है। यह ठीक है कि इससे तुम ताजा हो जाते हो, जीवंत हो जाते हो; ऊर्जावान हो जाते हो। सुबह तुम अधिक ताजा और आनंदित रहते हो। लेकिन अगर तुम बेहोश हो, तो केंद्र पर होकर भी तुम आदमी वही रहते हो, जो थे।

समाधि में तुम पूरे होश से, पूरे चैतन्य के साथ प्रवेश करते हो। और जब तुम पूरे चैतन्य के साथ केंद्र पर होते हो तो फिर कभी वह आदमी नहीं रहोगे; जो पहले थे। अब तुम जानोंगे कि मैं कौन हूं। अब तुम जानोंगे कि तुम्हारी चीजें, तुम्हारे कर्म परिधि पर है; वे मात्र लहरे है। वे तुम्हारा स्वभाव नहीं है।

अचानक रूकने की इन विधियों का उदेश्य तुम्हें निष्क्रियता में डालना है। इसलिए इस बिंदु का अचानक आना महत्वपूर्ण है। क्योंकि अगर निष्क्रिय होने की चेष्टा की जाएगी तो वही चेष्टा सक्रियता बन जाएगी। तो चेष्टा मत करो, बस निष्क्रिय हो जाओ। रूक जाओ का यही अर्थ है। अगर तुम दौड़ रहे हो और मैं कहता हूं रूक जाओ। तो तुम तुरंत रूक जाओ, चेष्टा मत करो। अगर चेष्टा करोगे तो चूक जाओगे।

यह एक विधि है: ''जैसे ही कुछ करने की वृति हो, रूक जाओ।''

यह एक आयाम है। जैसे, तुम्हें छींक आ रही है। तुम्हें लगता है कि अब तुम छींकने-छींकने को हो, एक क्षण और, और छींक आ जायेगी। तब मैं कुछ न कर सकूंगा लेकिन छींकने की वृति के पहले एहसास के साथ ही, जब उसकी पहली-पहली अहाट सुनाई पड़े, तभी ठहर जाओ।

तुम क्या कर सकते हो, क्या छींक को रोक सकते हो?

अगर तुम छींक को रोकने की कोशिश करोगे तो वह और जल्दी आएगी। क्योंकि रोकने की चेष्टा तुम्हें सचेत कर देगी। और छींक की उतैजना को बड़ा देगी तुम ज्यादा संवेदनशील होओगे। तुम्हारा पूरा अवधान वही इकट्ठा हो जाएगा। और उसी अवधान के कारण छींक जल्दी घटित हो जाएगी। वह असह्य हाँ जायेगी।

तुम सीधे-सीधे छींक को नहीं रोक सकते। लेकिन तुम अपने को रोक सकते हो। क्या कर सकते हो? तुम्हें एहसास होता है कि छींक आ रही है—ठहर जाओ। छींक को रोकने की कोशिश मत करो। बस तुम स्वयं रूक जाओ। कुछ मत करो। पूरी तरह अचल रहो, जिससे श्वास का आना जाना भी न हो। क्षण भर के लिए बिलकुल ठहर जाओ। और तुम देखोगें कि छींकने की वृति वापस लौट गई खत्म हो गई और वृति के जाने के साथ ही तुम्हारे भीतर कोई सूक्ष्म ऊर्जा मुक्त होकर तुम्हें केंद्र पर ले जाती है।

छींकने के साथ या किसी भी वृति के साथ तुम्हारी कुछ ऊर्जा बहार जाती है। वृति का अर्थ है कि तुम्हारी कुछ उर्जा भारी हो गई है और तुम उसका कोई उपयोग नहीं कर सकते हो। वह ऊर्जा तुम में जज़्ब भी नहीं हो सकती। यह सिर्फ बाहर जाना चाहती है। निकास चाहती है। तुम्हें राहत की जरूरत है। और कारण है कि छींकने के बाद तुम अच्छा अनुभव करते हो—एक

सूक्ष्म सुख की अनुभूति। क्या हुआ? कुछ भी नहीं, तुमने कुछ ऊर्जा बाहर फेंक दी है जो व्यर्थ थी, फालतू थी, बोझ थी। इसलिए उसके निकल जाने पर तुम राहत अनुभव करते हो। तब तुम अपने भीतर एक सूक्ष्म विश्राम की अनुभूति होती है।

एक और बात ख्याल में रख लो कि ऊर्जा सदा गतिमान रहती है। या तो वह बाहर जाती है या भी तर आती है। ऊर्जा कभी ठहराव में नहीं होती। ये नियम है। और यदि तुमने नियमों को समझा तो इस विधि का सूत्र पकड़ में आ जायेगा। ऊर्जा सदा गति है। वह या तो बाहर जाती है या भीतर; पर वह कभी अगति में नहीं होती। वह अगर अगति में है तो वह ऊर्जा ही नहीं है। और ऐसा कुछ भी नहीं है जो ऊर्जा नहीं है। इसलिए प्रत्येक चीज कही न कहीं गति कर रही है।

तो जब कोई वृति तुम में पैदा होती है तो उसका मतलब है कि ऊर्जा बाहर जा रही है। इसी से तुम्हारी हाथ गिलास पर चला जाता है। तुम बाहर गए। कुछ करने की इच्छा पैदा हुई। सब सक्रियता गति है—भीतर से बाहर की और जब तुम अचानक ठहर जाते हो तो तुम्हारे साथ ऊर्जा नहीं ठहरती है। तुम अगति में हो; लेकिन ऊर्जा अगति में नहीं हो सकती। और जिस यंत्र के द्वारा वह बाहर गति करती थी। वह मरा नहीं है। मात्र ठहर गया है। जो ऊर्जा क्या करे? वह भीतर जाने के सिवाय और कुछ भी नहीं कर सकती। ऊर्जा स्थिर नहीं रह सकती। वह बाहर जा रही थी तुम रूक गए और यंत्र भी रूक गया। लेकिन जो यंत्र उसे केंद्र पर ले जा सकता है वह मौजूद है। अब वह ऊर्जा भीतर की और गति करेगी।

और तुम क्षण-क्षण जाने अनजाने अपनी ऊर्जा को रूपांतरित कर रहे हो। उसके आयाम को बदल रहे हो। तुम क्रोध में हो; तुम किसी को मारना चाहते हो, कोई चीज नष्ट करना चाहते हो, या कुछ हिंसा करना चाहते हो। इसी क्षण एक प्रयोग करो। किसी मित्र को, अपनी पत्नी का या अपने किसी बच्चे को प्रेम करने लगी। उसे चूमो, उसे गले लगाओ। तुम गुस्से में थे तुम किसी को मिटाने जा रहे थे। तुम हिंसा पर उतारू थे। तुम्हारा चित विध्वंस के लिए तत्पर था; तुम्हारी ऊर्जा हिंसा की और गति कर रही थी। और तभी तुम किसी को अचानक और तुरंत प्रेम करने लगते हो।

शुरू में तुम्हें लगेगा, यह तो अभिनय जैसा है। तुम्हें आश्चर्य होगा कि मैं प्रेम कैसे कर सकता हूं। मैं तो अभी क्रोध में हूं लेकिन तुम मन के यंत्र को नहीं समझते हो। इसी क्षण तुम गहरे प्रेम में उतर सकते हो। क्योंकि ऊर्जा जाग गई है। वह उस बिदुं पर पहूंच गई है। जहां उसे अभिव्यक्ति चाहिए। ऊर्जा को गति करने की जरूरत है। अगर इसी क्षण तुम किसी को प्रेम करने लगो तो ऊर्जा प्रेम में प्रविष्ट हो जायेगी। और तुम्हें ऊर्जा का यह प्रवाह अभिभूत कर देगा जिसका अनुभव संभवत: तुम्हें पहले कभी नहीं हुआ होगा।

तुम अपना निरीक्षण करो, और तुम यही पाओगे। तुम कहते एक बात हो और सोचते बिलकुल दूसरी बात हो। तुम बिलकुल दूसरी बात कहना चाहते थे; लेकिन अगर तुम सच बोल दो तो तुम किसी काम के न रहोगे। कारण यह है कि समूचा समाज झूठा है। और एक झूठे समाज में तुम झूठे होकर ही रह सकते हो। जितने तुम समाज से समायोजित होगें उतने ही झूठे हो जाओगे। और अगर सच्चे होना चाहोगे तो समाज के साथ ताल मेल नहीं होगा। तुम उखड़े-उखड़े रहोगे।

यही कारण है कि संन्यास का जन्म हुआ। वह झूठे समाज के कारण आया। बुद्ध को समाज का त्याग इसलिए नहीं करना पडा कि उसका कोई अपने में अर्थ था। उसका सिर्फ निषेधात्मक उपयोग था। झूठे समाज के साथ तुम सच्चे नहीं रह सकते। और यदि रहा तो कदम-कदम पर उसके साथ अनावश्यक संघर्ष करना होगा। उससे ऊर्जा नष्ट होती है। झूठे को छोड़ो ताकि तुम सच्चे हो सको। सब संन्यास का बुनियादी कारण यही था।

अपना निरीक्षण करो कि तुम कितने झूठे हो। अपने दोहरे मन को देखो। तुम कहते एक बात हो और सोचते बिलकुल विपरीत बात हो। साथ ही साथ तुम मन में कुछ कह रहे हो और बाहर कुछ और बोल रहे हो।

ऐसी किसी झूठी वृति के साथ ठहरने से यह विधि काम न करेगी। अपने बाबत कुछ प्रामाणिक खोजों, और उसके साथ ठहरने का प्रयोग करो। सब कुछ झूठ नहीं हो गया है। बहुत चीजें अभी भी वास्तविक है। सौभाग्य से कभी-कभी प्रत्येक व्यक्ति वास्तविक होता है। किसी-किसी क्षण में प्रत्येक व्यक्ति प्रामाणिक होता है। तब रुको।

तुम क्रोध में हो, और जानते हो कि क्रोध सच्चा है। तुम किसी को नष्ट करने जा रहे हो। या अपने बच्चे को पीटने जा रहे हो। वहां रुको। लेकिन किसी प्रयोजन से नहीं। मत कहो कि क्रोध करना बुरा है, इसलिए मैं रुकता हूं। किसी मानसिक सोच-विचार की जरूरत नहीं है। सोच-विचार से ऊर्जा उसमें ही लग जाती है। यह भीतरी व्यवस्था है। अगर तुम कहते हो कि मुझे बच्चे को नहीं मारना चाहिए। क्योंकि इससे उसका कोई लाभ नहीं होने वाला है। और इससे मेरा भी कोई लाभ नहीं हो सकता है। यह बात ही व्यर्थ है। किसी काम का नहीं है। तो जो ऊर्जा क्रोध बनने जा रही थी, वह सोच-विचार बन जाएगी। जब तुम सारी चीज पर विचार कर लोगे तो क्रोध की ऊर्जा उतर जाएगी और सोच-विचार में प्रवेश कर जायेगी। उस अवस्था में रूकने पर गति करने के लिए ऊर्जा नहीं रहती है। जब तुम क्रोध में हो विचार मत करो। यह मत कहो कि भला है या बुरा कुछ विचार ही मत करो। एकाएक विधि को स्मरण करो और रूक जाओ।

क्रोध शुद्ध ऊर्जा है—न बुरा है और न भला। क्रोध भला भी हो सकता है। और बुरा भी हो सकता है। यह उसके परिणाम पर निर्भर है। ऊर्जा पर नहीं है। यह बुरा हो सकता है। अगर यह बाहर जाए और किसी को नष्ट करे। अगर यह विध्वंसक हो जाए। वहीं क्रोध सुंदर समाधि में परिणत हो सकता है। अगर वह भीतर मुड़ जाए और वह तुम्हें तुम्हारे केंद्र पर फेंक दे। तब वह फूल बन जाएगा। ऊर्जा मात्र ऊर्जा है। स्वच्छ, निर्दोष, तटस्थ।

तो विचार मत करो। अगर तुम कुछ करने जा रहे हो तो सोचो मत; केवल ठहर जाओ। और ठहरे रहो। उस ठहरने में तुम्हें केंद्र की झलक मिलती है। तुम परिधि को भूल जाओगे। और तुम्हें केंद्र दिखने लगेगा।

''जैसे ही कुछ करने की वृति हो, रूक जाओ।''
इसका प्रयोग करो। इस संबंध में तीन बातें स्मरण रखो। एक, प्रयोग तभी करो जब वृति वास्तविक हो। दो, रूकने के संबंध में विचार मत करो। बस रूक जाओ। तीन, प्रतीक्षा करो। जब तूम ठहर गए तो श्वास न चले, कोई गति न हो—बस प्रतीक्षा करो कि क्या होता है। कोई चेष्टा न हो।

जब मैं कहता हूं कि प्रतीक्षा करो तो उससे मेरा मतलब है कि आंतरिक केंद्र के संबंध में विचार करने की चेष्टा मत करो। यदि चेष्टा की तो फिर चूक जाओगे। केंद्र की मत सोचो। मत सोचो कि अब झलक आने को है। कुछ भी मत सोचो। मात्र प्रतीक्षा करो। वृति को, ऊर्जा को स्वयं करने दो। अगर तुम केंद्र और आत्मा ब्रह्म के बारे में विचार करने लगे तो ऊर्जा उसी विचारणा में लग जाएगी।

तुम बहुत आसानी से आंतरिक ऊर्जा को गंवा सकते हो। एक विचार भी उसे गति देने के लिए काफी है। तब तुम सोचते चले जाओगे। जब मैं कहता हूं कि ठहर जाओ तो उसका मतलब है पूरी तरह, समग्ररूपेण ठहर जाओ। कुछ भी गति न हो—मानो कि सारा जगत ठहर गया है; कोई गति नहीं; केवल तुम हो। उस केवल अस्तित्व में अचानक केंद्र का विस्फोट होता है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—17

तंत्र-सूत्र—विधि—26 (ओशो)

अचानक रूकने की कुछ विधियां:

दूसरी विधि:
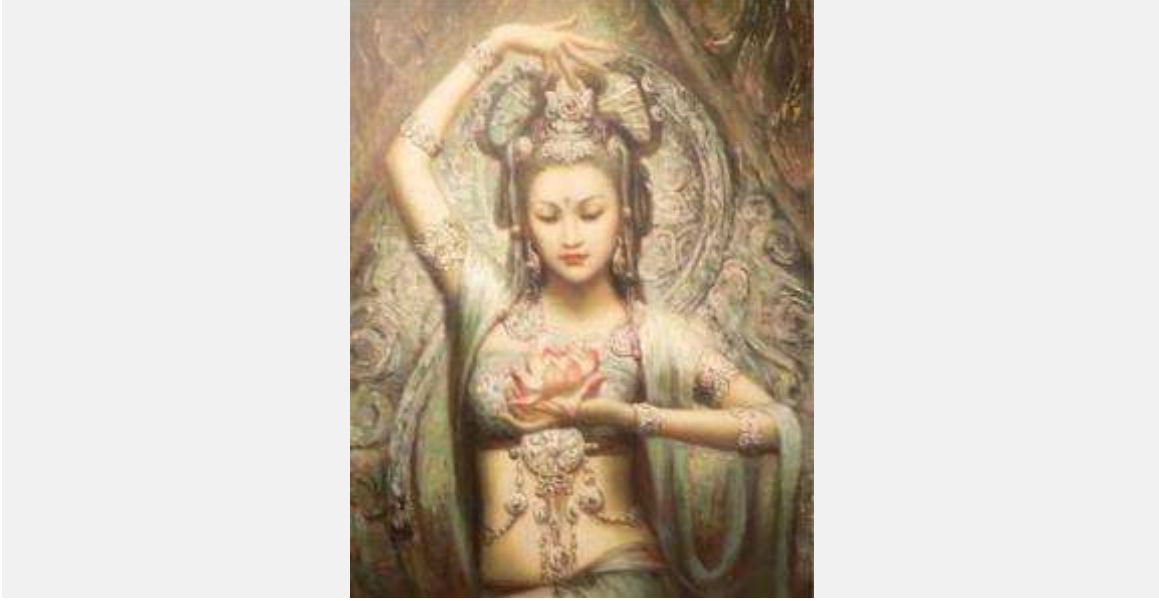
तंत्र-सूत्र—विधि—26 (ओशो) शिव– विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

''जब कोई कामना उठे, उसे पर विमर्श करो। फिर, अचानक, उसे छोड़ दो।''
यह पहली विधि का ही दूसरा आयाम है।

''जब कोई कामना उठे, उस पर विमर्श करो। अचानक, उसे छोड़ दो।''

तुम्हें कोई इच्छा होती है—चाहे वह कामवासना हो, चाहे प्रेम की इच्छा हो, चाहे भोजन की इच्छा हो। तुम्हें इच्छा होती है तो उस पर विमर्श करो। जब यह सूत्र कहता है कि विमर्श करो तो उसका मतलब होता है कि उसके पक्ष या विपक्ष में विचार मत करो। बल्कि देखो कि वह इच्छा क्या है।

मन में कामवासना पैदा होती है और तुम कहते हो कि यह बुरी है। यह विमर्श करना नहीं हुआ। तुम्हें सिखाया गया है कि कामवासना बुरी है। इसीलिए उसे बुरा कहना विमर्श नहीं है। तुम शास्त्रों से पूछ रहे हो। तुम अतीत से पूछ रहे हो। तुम गुरूओ और ॠषियों से पूछ रहे हो। तुम स्वयं कामना पर विमर्श नहीं कर रहे हो। तुम किसी और चीज पर विमर्श कर रहे हो। हो सकता है, वह तुम्हारा संस्कार हो, तुम्हारे पालन-पोषण की शैली हो। तुम्हारी शिक्षा हो। तुम्हारी संस्कृति हो, तुम्हारा धर्म हो। तुम उन पर विचार कर रहे हो कामना पर विमर्श नहीं।
यह सीधी सी चाह पैदा हुई है। इसमे मन को मत बीच में लाओ। अतीत को शिक्षा को, संस्कार को मत बीच में लाओ। केवल इस चाह पर विमर्श करो की यह क्या है। अगर वह सब तुम्हारी खोपड़ी से बिलकुल पोंछ दिया जाए जो तुम्हें समाज से, मां-बाप से, शिक्षा और संस्कृति से मिला है। अगर तुम्हारा मन पोंछकर अलग कर दिया जाए तो भी कामवासना पैदा होगी। क्योंकि वह वासना तुम्हें समाज से नहीं मिलती है। वह वासना जैविक है। तुम में बिल्ट है। वह तुम में ही है।

उदाहरण के लिए, एक नवजात शिशु को लो। यदि उसे कोई भाषा न सिखायी जाए तो वह भाषा नहीं जानेगा। भाषा के बिना रहेगा। भाषा एक सामाजिक घटना है। वह सिखायी जाती है। लेकिन जब ठीक समय आएगा तो इस बच्चे को भी कामवासना

उठेगी। कामवासना समाजिक घटना नहीं है। वह जैविक रूप से बिल्ट है। सही और प्रौढ़ क्षण आने पर वह पैदा होगी। वह आएगी। वह समाजिक नहीं है। जैविक है और गहरी है। वह तुम्हारी कोशिकाओं में ही बिल्ट इन है।

तुम्हारा जन्म कामवासना से हुआ है, इसलिए तुम्हारे शरीर की प्रत्येक कोशिका काम-कोशिका है। तुम काम-कोशिकाओं से बने हो। जब तूम तुम्हारी बायोलाजी पूरी तरह न मिटा दी जाए तब के कामवासना रहेगी। वह आएगी ही, क्योंकि वह है ही । कामवासना बच्चे के जन्म के साथ-साथ आती है; क्योंकि बच्चा मैथुन की उप-उत्पती है। वह कामवासना से ही पैदा हुआ है। उसका समूचा शरीर काम कोशिकाओं से बना है। वासना मौजूद है, सिर्फ समय की जरूरत है। जब उसका शरीर प्रौढ़ होगा तो वासना आएगी और वह उसमें जाएगा। चाहे कोई तुम्हें सिखाये या न सिखाये। या तुम्हें लाख कहे की कामवासना बुरी चीज है। वह अच्छी नहीं है। वह पाप है। वह नरक में ले जाती है। या वह ये है या वो है। कामवासना सदा मौजूद रहती है।

पुरानी परंपराएं, पुराने धर्म खासकर ईसाइयत कामवासना के खिलाफ थी। वह उसके खिलाफ जोर दार प्रचार कर रही थी। यिप्पी या हिप्पी और अन्य संप्रदाय इसके विपरीत आंदोलन चला रहे है। वे कहते है कि कामवासना शुभ है। कि कामवासना में परम सुख है। वे कहते है कि संसार में कामवासना ही असली चीज है।

उसे अशुभ कहो या शुभ, दोनों ही सिखावन है। किसी सिखावन के मुताबिक अपनी चाह का विचार मत करो। कामना पर, उसकी शुद्धि में, वह जैसी है, एक तथ्य की तरह विमर्श करो। उसकी व्याख्या मत करो। यहां विमर्श का मतलब व्याख्या नहीं है। तथ्य को तथ्य की तरह देखना है। चाह है, उसे सीधा और प्रत्यक्ष देखो। विचारों और धारणाओं को बीच में मत लो। कोई विचार तुम्हारा नहीं है। कोई धारण तुम्हारी नहीं है। हर चीज तुम्हें दी गई है। हर धारणा उधार है। कोई विचार मौलिक नहीं है। कोई विचार मौलिक नहीं हो सकता। इसलिए विचार को बीच में मत लो। सिर्फ कामना को देखो कि वह क्या है। ऐसे देखो जैसे कि तुम्हें उसके संबंध में कुछ भी पता नहीं है। उसका साक्षात्कार करो। विमर्श का अर्थ यही है।

''जब कोई कामना उठे, उस पर विमर्श करो।''

उसे तथ्य की तरह देखा; देखो कि यह क्या है। दुर्भाग्य से यह सर्वाधिक कठिन कामों में से एक है। इसके मुकाबले चाँद पर जाना कठिन नहीं है। गौरी शंकर पर पहुंचना कठिन नहीं है। चाँद पर पहुंचना बहुत जटिल है। अत्यंत जटिल; लेकिन आंतरिक मन के किसी तथ्य के साथ जीने की बात के सामने चाँद पर पहुंचना कुछ भी नहीं है। क्योंकि तुम जो भी करते हो उसमें मन बहुत सूक्ष्म रूप से संलग्न रहता है। मन उसमें सदा समाया रहता है। उलझा रहता है।

इस शब्द को देखो, ज्यों ही मैंने कहां कि कामवासना या संभोग कि तुम तुरंत उसके पक्ष या विपक्ष में कुछ निर्णय लेते हो। जिस क्षण मैंने कहां संभोग कि तुम ने व्याख्या कर ली। तुम कहते हो, यह भला है या वह बुरा है। तुम शब्द की भी व्याख्या कर लेते हो।

जब ''संभोग'' से समाधि की और पुस्तक प्रकाशित हुई तो बहुत से लोग मेरे पास आए। उन्होंने कहा कि कृपा कर यह नाम ''संभोग से समाधि की और'' बदल दीजिए। संभोग शब्द से उन्हें घबड़ाहट होती है। उन्होंने किताब भी नहीं पढ़ी। और वे भी नाम बदलने को कहते है। जिन्होंने किताब नहीं पढ़ी वे भी क्यों?

यह शब्द ही तुम्हारे भीतर व्याख्या को जन्म देता है। मन ऐसा व्याख्याकार है कि अगर मैंने कहा के नींबू का रस तो तुम्हारी लार टपकने लगती है। तुमने शब्दों की व्याख्या कर ली। ''नींबू का रस'' इन शब्दों में नींबू जैसी कोई चीज नहीं है। लेकिन तुम्हारे मुंह में खट्टापन भर जायेगा। मन ने व्याख्या कर ली; मन बीच में आ गया।

''फिर अचानक, उसे छोड़ दो।''

इस विधि के दो हिस्से है। पहला कि तथ्य के साथ रहो। जो हो रहा है उसके प्रति सजग रहो। अवधान पूर्ण रहो। देखो कि जब कामवासना पकड़ती है तो तुम्हारे भीतर क्या-क्या घटित होता है। तुम्हारा शरीर ज्वरग्रस्त हो जाता है। कांपने लगता है। तुम्हें लगता है। कि तुम किसी से आविष्ट हो। इसका अनुभव करो, इस पर विमर्श करो; कोई निर्णय न लो। सीधे तथ्य में प्रवेश करो। यह मत कहो कि यह बुरा है। अगर बुरा कहा तो विमर्श समाप्त हो गया, तुम ने द्वार बंद कर दिया। अब कामवासना की और तुम्हारी पीठ है, मुंह नहीं। तुम उससे दूर सरक गए। ऐसे तुम ने एक गहरा और कीमती क्षण गंवा दिया। जिसमें तुम अपने जीवन की एक जैविक पर्त का दर्शन कर सकते थे।

तुम अभी जिस पर्त से परिचित हो वह सामाजिक पर्त है, और तुम उससे ही चिपके हो। वह सतही है। कामवासना तुम्हारे शास्त्रों से गहरी है। क्योंकि वह जैविक है। अगर सभी शास्त्र नष्ट कर दिए जाए—ऐसा हो सकता है। ऐसा कई बार हुआ है। तो तुम्हारी व्याख्या खो जाएगी। लेकिन कामवासना तब भी रहेगी। वह ज्यादा गहरी है।

सतही चीजों को बीच में मत लाओ। तथ्य पर अवधान दो, उसमे प्रवेश करो, और देखो कि तुम्हें क्या हो रहा है। किसी ऋषि विशेष को, मोहम्मद को, महावीर को क्या हुआ। वह प्रासंगिक नहीं है। इस क्षण तुम्हें क्या हो रहा है। इस जीवंत क्षण में जो हो रहा है। वह प्रासंगिक है। उस पर विमर्श करो। उसका ही निरीक्षण करो।

और अब दूसरा हिस्सा; यह सचमुच अद्भुत है।

शिव कहते है: ''फिर, अचानक छोड़ दो।''

यहां ''अचानक'' को याद रखो। यह मत कहो कि यह खराब है, इसलिए छोड़ रहा हूं। यह मत कहो कि यह खराब है। इस लिए इसे नहीं रखूंगा। यह मत कहो कि यह बुरा है। यह पाप है, इसलिए इसके साथ गति नहीं करूंगा। मैं इसे त्याग दूँगा। मैं इसका दमन कर दूँगा। तब तो दमन घटित होगा। ध्यान नहीं। आरे दमन अपने ही हाथों अपना एक भ्रमित चित निर्मित करना है।

दमन मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है; उसके द्वारा तुम समूचे यंत्र को उपद्रव में डाल रहे हो।1 उन ऊर्जाओं को दबा रहे हो जो किसी ने किसी दिन फुटकर बहार आएँगी। ऊर्जा तो है ही, सिर्फ दमित हो गई है। न इसे बाहर जाने दिया गया है और न भीतर; उसे सिर्फ दमित कर दिया गया है। वह कोने कातर में छिप गई है। जहां वह पड़ी रहेगी। और विकृत होगी।

और स्मरण रहे, विकृत ऊर्जा ही मनुष्य की बुनियादी समस्या है। जो मानसिक रूग्णताएं है, वे विकृत ऊर्जा की उप-उत्पती है। तब वह ऊर्जा ऐसे ढंगों में अभिव्यक्त होगी जिसकी कोई कल्पना नहीं हो सकती है। और इन विकृतियां में भी वह फिर अपने को अभिव्यक्त करने की चेष्टा करेगी। और जब वह विकृत रूप में अभिव्यक्ति होती है। तो बहुत दुःख और संताप लाती है। विकृत ऊर्जा की अभिव्यक्ति से संतुष्टि नहीं मिलती है। और अड़चन यह है कि तुम विकृत नहीं रह सकते। तुम्हें विकृति को अभिव्यक्ति देना होगी। दमन विकृति पैदा करता है। इस सूत्र का दमन से कुछ लेना-देना नहीं है। यह सूत्र यह नहीं कहता कि नियंत्रण करो; यह सूत्र दमन की बात ही नहीं करता है।

यह सूत्र कहता है: ''अचानक, छोड़ दो।''

तो क्या किया जाए। कामना है; कामना पर तुमने विमर्श किया है। अगर कामना पर तुमने विमर्श किया है तो दूसरा भाग कठिन नहीं होगा। तब यह आसान होगा। यदि विमर्श नहीं किया है तो तुम्हारे मन में विचार चलते रहेंगे। मन कहेगा, यह अच्छा है कि कामवासना को हम अचानक छोड़ दे।

तुम छोड़ना चाहोगे। लेकिन यह सवाल नहीं है। यह पसंद तुम्हारी न होकर समाज की हो सकती है। यह पसंद तुम्हारा विमर्श न होकर मात्र परंपरा हो सकती है। इसलिए विमर्श करो। पसंद या गैर पसंद की बात मत उठाओ। केवल विमर्श करो। और तब तुम्हारा हिस्सा आसान हो जाएगा। तब तुम कामना को छोड़ सकते हो। कैसे छोड़ सकते हो।

जब किसी चीज पर तुम ने समग्र रूपेण विमर्श किया है तो उसे छोड़ना बहुत आसान हो जाता है। वह इतना ही आसान है जितना मेरे लिए इस कागज़ हो गिराना। ''इसे छोड़ दो।'' क्या होगा? कामना है; उसे तुम ने दबाया नहीं है। कामना है; और वह बाहर जाना चाहती है। वह उठ रही है। और तुम्हारे पूरे अस्तित्व को उद्वेलित कर दिया है। सच तो यह है कि जब तुम किसी कामना पर बिना किसी व्याख्या के विचार करोगे तो तुम्हारा पूरा अस्तित्व ही कामना बन जाएगा।

समझो कि कामवासना है और तुम उसके पक्ष या विपक्ष में नहीं हो। उसके संबंध में तुम्हारी कोई धारणा नहीं है, तुम सिर्फ उसे देख रहे हो। तो इस देखने भर से तुम्हारा पूरा अस्तित्व उस कामना में संलग्न हो जाएगा। एक अकेली कामवासना आग की लपट बन जाएगी। उस में तुम्हारा अस्तित्व जलने लगेगा—मानो कि तुम समग्र रूपेण कामुक हो उठे हो। तब कामवासना काम-केंद्र पर ही सीमित नहीं रहेगी। वह तुम्हारे पूरे शरीर पर फैल जाएगी। तुम्हारे शरीर का एक-एक तंतु कांपने लगेगा। कामना अंगारा बन जाएगी। तब उसे छोड़ दो, उससे अचानक हट जाओ। उससे लड़ों मत, इतना ही कहो कि मैं छोड़ता हूं।

तब क्या होगा। ज्यों ही तुम कहते हो कि मैं छोड़ता हूं, एक अलगाव घटित होता है। तुम्हारा शरीर कामात्तप्त शरीर और तुम दो हो जाते हो। अचानक एक क्षण को भीतर उनके बीच जमीन-आसमान की दूरी पैदा हो गई। शरीर तो आवेग में, कामवासना से उद्वेलित है। और केंद्र शांत है। मात्र देख रहा है। स्मरण रहे, वहां कोई संघर्ष नहीं है। सिर्फ अलगाव है। संघर्ष तुम अलग नहीं होते, जब तुम लड़ते हो, तुम लड़ाई के विषय के साथ एक होते हो। तुम जब मात्र छोड़ देते हो तब तुम अलग होते हो, तब तुम इसे देख सकते हो। मानो तुम नहीं दूसरा देख रहा है।

मेरे एक मित्र बहुत वर्षों तक मेरे साथ थे। वे सतत धूम्रपान करते थे—चेन स्मोकर थे। और जैसा कि सभी धूम्रपान करने वाले करते है। मेरे मित्र ने भी निरंतर उससे छूटने की चेष्टा की। किसी सुबह अचानक तय करते कि अब मैं धूम्रपान नहीं करूंगा। और श्याम होते-होते फिर पीने लगते। और फिर वह अपराधी अनुभव करते और अपना बचाव करते और तब कुछ दिनों तक धूम्रपान छोड़ने का नाम भी नहीं लेते। फिर वे यह सब भूल जाते और किसी दिन साहस जुटाकर फिर कहते कि अब मैं धूम्रपान नहीं करूंगा। और मैं सिर्फ हंसता, क्योंकि यह घटना इतनी बार दुहरा चुकी थी।

फिर वे खुद भी इस दुस्चक्र से ऊब उठे कि धूम्रपान करना और छोड़ना मानो हमेशा-हमेशा के लिए उनका संगी साथी बन गया है। वे गंभीरता से सोचने लगे कि क्या करू। और तब उन्होंने मुझसे पूछा कि मैं क्या करूं। मैंने उनसे कहा कि पहली बात तो यह कि धूम्रपान का विरोध करना छोड़ दो, धूम्रपान करो और मजे से करो। सात दिनों तक इसका कोई विरोध मत करो, इसे स्वीकार कर लो।

उन्होंने कहा कि यह आप क्या कह रहे है। मैं इसके विरोध में रहकर भी इसे नहीं छोड़ सकता हूं। और आप इसे स्वीकार को कहते है। तब तो छोड़ने की जरा भी संभावना नहीं रहेगी। मैंने उन्हें समझाया कि तुम शत्रुता का रूख प्रयोग करके देख चुके, निष्फलता ही हाथ लगी है। अब मैत्री के रूख का प्रयोग करो। बस सात दिनों के लिए धूम्रपान का विरोध मत करो।

उन्होंने छूटते ही पूछा कि क्या तब धूम्रपान छूट जाएगा? मैंने कहा: तुम अब भी उसके प्रति शत्रुता का भाव रखते हो। छोड़ने के भाव में ही शत्रुता है। छोड़ने की बात ही भूल जाओ। धूम्रपान के साथ रहो। उसके साथ सहयोग करो। क्या कोई मित्र को छोड़ने का विचार करता है। सात दिन तक छोड़ने की बात को भूल जाओ। उसका सहयोग करो। जितना संभव हो उतने प्रगाढ़ ढंग से, उतने प्रेम के साथ पीओ। जब तुम धूम्रपान कर रहे हो तो उस समय सब कुछ भूलकर धूम्रपान ही हो जाओ। उसके

साथ आराम से रहो, उसके साथ संवाद साध लो। सात दिन तक जितना संवाद साध लो। सात दिन तक जितना चाहो उतना धुम्रपान करो, छोड़ने की बात ही भूल जाओ।

ये सात दिन उनके लिए विमर्श के दिन बन गये। वे धूम्रपान के तथ्य को सीधा-सीधा देख पाए। वे इसके विरोध में नहीं थे। इसलिए अब वे इसका साक्षात्कार कर सकते थे। जब तुम किसी व्यक्ति या वस्तु के विरोध में होते हो तो तुम उसका साक्षात्कार नहीं कर सकते। विरोध ही बाधा बन जाता है। तब विमर्श कहां। क्या तुम शत्रु पर विमर्श करते हो? तुम उसे देख भी नहीं सकते। तुम उसकी आँख से आँख नहीं मिला सकते। शत्रु को देखना बहुत कठिन है। तुम उसी व्यक्ति की आंखों में आँख डालकर देख सकते हो। जिसे तुम प्रेम करते हो। प्रेम में ही तुम गहरे उतर सकते हो। अन्यथा आँख मिलाना मुश्किल है।

मेरे उन मित्र ने धूम्रपान के तथ्य का गहराई से साक्षात्कार किया। सात दिन तक वे विमर्श करते रहे। उन्होंने विरोध छोड़ दिया था। इसीलिए ऊर्जा सुरक्षित थी। और वह ध्यान बन गया। उन्होंने सहयोग किया और वे धुम्रपान सी बन गए।

सात दिन बाद मेरे मित्र मुझे कहना भी भूल गये कि क्या हुआ था। मैं इंतजार कर रहा था कि वे और कहेंगे कि सात बित गये। अब मैं धूम्रपान कैसे छोड़ू। वे सात दिन की बात ही भूल गये। तीन सप्ताह गुजर गये तो मैंने ही उनसे पूछा कि आप बिलकुल भूल गये क्या? उन्होंने कहा कि यह अनुभव सुंदर रहा, इतना सुंदर कि अब मैं किसी चीज के विषय में सोचना ही नहीं चाहता। पहली बार मैंने तथ्य के साथ संघर्ष नहीं किया, पहली बार मैं सिर्फ अनुभव कर रहा हूं। उसे जो मेरे साथ घटित हो रहा है।

तब मैंने उनसे कहा, ''अब जि भी धुम्रपान की वृति पैदा हो, तो उसे छोड़ दो।'' उन्होंने फिर नहीं पूछा कि कैसे छोड़ना है। उन्होंने पूरी चीज पर विमर्श किया था। और उससे ही वह पूरी चीज बचकानी दिखने लगी थी। संघर्ष की गुंजाईश ही नहीं थी। तब मैंने उनसे कहा कि अब जब फिर धूम्रपान की चाह पैदा हो तो उसे देखो। और उसे छोड़ दो। सिगरेट को अपने हाथ में ले लो, एक क्षण के लिए रूको और तब सिगरेट को छोड़ दो, गिर जाने दो। और सिगरेट के गिरने के साथ-साथ धूम्रपान की वृति पैदा हो और तुम उसे छोड़ दो तो सारी ऊर्जा एक छलांग लेकर भीतर गति कर जाती है।

विधि एक ही है, केवल उसके आयाम भिन्न है।

''जब कोई कामना उठे, उस पर विमर्श करो। फिर, अचानक, उसे छोड़ दो।''

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—17

तंत्र-सूत्र—विधि—27 (ओशो)

Posted on जून 16, 2012

अचानक रूकने की कुछ विधियां:
तीसरी विधि:

विज्ञान भैवर तंत्र— अचानक रूकने की कुछ विधियां:

‘’पूरी तरह थकनें तक घूमते रहो, और तब जमीन पर गिरकर, इस गिरने में पूर्ण होओ।‘
वही है, विधि वही है।

पूरी तरह थकनें तक घूमते रहो।

बस वर्तुल में घूमों। कुदो, नाचो, दौड़ों, जब तक थ न जाओ घूमते रहा। यह घूमना तब तक जारी रहे जब तक ऐसा न लगे कि और एक कदम उठना असंभव है। लेकिन यह ख्याल रखो कि मन कह सकता है कि अब पूरी तरह थक गए। मन की बिलकुल मत सुनो। चलते चलो, दौड़ते रहो। नाचते रहो, कूदते रहो।

मन बार-बार कहेगा कि बस करो, अब बहुत थक गए। मन पर ध्यान ही मत दो। तब तक घूमना जारी रखो जब तक महसूस न हो—विचारना नहीं, महसूस करना महत्वपूर्ण है—कि शरीर बिलकुल थक गया है। और अब ऐ कदम भी उठाना संभव न होगा। और यदि उठाऊंगा तो गिर जाऊँगा। जब तुम अनुभव करो कि अब गिरा तब गिरा। अब आगे नहीं जा सकता, शरीर भारी और थक कर चूर हो गया है। ‘’तब जमीन पर गिरकर इस गिरने में पूर्ण होओ।‘’ तब गिर जाओ।
ध्यान रहे कि थकना इतना हो कि गिरना अपने आप ही घटित हो। अगर तुमने दौड़ना जारी रखा तो गिरना अनिवार्य है। जब यह चरम बिंदू आ जाए तब—सूत्र कहता है—गिरो और इस गिरने में पूर्ण होओ।

इस विधि का केंद्रिय बिंदू यही है: जब तुम गिर रहे हो, पूर्ण होओ।

इसका क्या अर्थ है? पहली बात यह है कि मन के कहने से ही मत गिरो। क्योंकि आयोजन मत करो। बैठने की चेष्टा मत करो, लेटने की चेष्टा मत करो। पूरे के पूरे गिर जाओ मानो कि पूरा शरीर एक है। और वह गिर गया है। ऐसा न हो कि तुमने उसे गिराया है। अगर तुमने गिराया है तो तुम्हारे दो हिस्से हो गए। एक गिरने वाले तुम हुए और दूसरा गिराया हुआ शरीर हुआ। तब तुम पूर्ण न रहे। खंडित और विभाजित रहे।

उसे अखंडित गिरने दो; अपने को समग्ररतः: गिरने दो। 'गिरो' शब्द को याद रखो। व्यवस्था नहीं करनी है। मृतवत गिर जाना है। इस गिरने में पूर्ण होओ। अगर इस भांति गिरे तो पहली बार तुम्हें अपने पूरे अस्तित्व का, अपनी पूर्णता का एहसास होगा। पहली बार केंद्र को अखंड, अद्वैत, एक अनुभव करोगे। यह कैसे घटित होगा?

शरीर में ऊर्जा के तीन तल है। एक है दैनंदिन कामों का तल। इस तल को याद रखो। आसानी से चुक जाती है। यह दिनचर्या के कामों के लिए ही है। दूसरा तल आपातकालीन कामों के लिए है। यह ज्यादा गहरा ती है। जब तुम किसी संकट में होते हो तभी इस ऊर्जा का उपयोग करते हो। और तीसरा तल जागतिक ऊर्जा का है, जो अनंत है।

पहले तल की ऊर्जा आसानी से चुक जाती है। यदि मैं तुम्हें दौड़ने को कहूं तो तुम तीन चार चक्कर लगाकर कहोगे कि मैं थक गया हूं। सच में तुम थके नह हो। पहल तल की ऊर्जा समाप्त हो गई है। सुबह में यह इतनी आसानी से नहीं चुकती, शाम में जल्दी चुक जाती है। क्योंकि दिन भर तुमने उसका उपयोग किया है। अब इसे विश्राम की जरूरत है। यही वजह है। कि रात में शरीर आराम खोजता है। उसे गहरी नींद की जरूरत है। जागतिक ऊर्जा के भंडार से शरीर फिर अगले दिन के काम के लिए जरूरी ऊर्जा ले लेगा। यह पहली तल हुआ।

अभी यदि मैं तुमसे दौड़ने को कहूं तो तुम कहोगे कि मुझे नींद आ रही है। तभी कोई आता है और कहता है कि तुम्हारे घर में आग लग गई है। अचानक तुम्हारी नींद काफूर हो गई। थकावट जाती रही। तुम ताजा हो गए और दौड़ने लगे। अचानक क्या हुआ? तुम थके थे, लेकिन आपत्काल ने तुम्हें तुम्हारी ऊर्जा के दूसरे तल से जोड़ दिया, और तुम फिर ताजा हो गये। यह दूसरा तल है।

इस विधि में दूसरे तल की ऊर्जा का चुकाना है। पहला तल बहुत आसानी से चुक जाता है। उसने चुकने पर भी दौड़ते रहो। थकनें पर भी दौड़ते रहो। कुछ ही क्षण में ऊर्जा की एक नई लहर आएगी और तुम फिर ताजा हो जाओगे। और तुम्हारी थकावट चली जायेगी।

अनेक लोग मुझसे आकर कहते है कि जब हम साधना शिविर में होते है तब एक चमत्कार सा होता है कि हम इतना कर लेते है। सुबह में एक घंटा सक्रिय ध्यान, जिसमे हम पूरे पागल की तरह ध्यान करते है। पिछले पहर भी एक घंटा ध्यान करते है। और फिर रात में भी। तीन-तीन बार हम पागलों की तरह ध्यान करते है। अनेक लोगों ने कहां है कि यह हमें असंभव सा लगता है। लगता है कि अब और नहीं चलेगा। लगता है कि अगले दिन हाथ पाँव हिलाना भी असंभव होगा। लेकिन कोई थकता नहीं है। रोज तीन-तीन सत्र और इतना कठिन श्रम। और इसके बावजूद कोई भी नहीं थकता है। ऐसा क्यों है?

ऐसा इसलिए है कि लोग शिविर में दूसरे तल की ऊर्जा से संबंधित हो जाते है। यदि तुम अकेले करो तो थक जाओगे। किसी पहाड़ पर जाकर प्रयोग करके देखो, पहले तक के चूकते ही तुम चुक जाते हो। लेकिन एक बड़े समूह में, जहां पाँच सौ लोग सक्रिय ध्यान कर रहे हों, बात दूसरी है। तुम्हें लगता है, दूसरे लोग जब नहीं थके है तो तुमको भी कुछ देर जारी रखना चाहिए। और हरेक आदमी ऐसा ही सोच रहा है। कि जब कोई नहीं थका है तो मुझे भी जारी रखना चाहिए। जब सक काई ताजा और सक्रिय है तो मैं ही क्यों थकान अनुभव करूं?

यह समूह भाव तुम्हें प्रेरणा देता है। शक्ति देता है और तुम दूसरे तल पर पहूंच जाते हो। और दूसरा तल बहुत बड़ा है— आपातकालीन तल जो है। और जब आपातकालीन तल चुकता है तब और अभी, तुम जाग्रति तल में, प्रवेश कर जाते हो। अनंत से तुम्हारा संबंध स्थापित हो जाता है। इसलिए बहुत श्रम की जरूरत है। इतने श्रम की कि तुम्हें लगे कि अब यह मेरे बस की बात नहीं है।

लेकिन अभी भी यह तुम्हारे वश के बाहर नहीं है। यह सिर्फ तुम्हारे पहले तल कि ऊर्जा के वश के बाहर है। जब पहले तल की ऊर्जा चुकती है। तो थकावट महसूस होती है। दूसरे तल की ऊर्जा के चूकने पर तुम्हें लगेगा की अब अगर और ज्यादा किया तो मैं मर जाऊँगा।

अनेक लोग मरे पास आते है और कहते है कि जब हम ध्यान की गहराई में उतरते है तो एक क्षण के आता है कि हम भयभीत हो जाते है। आतंकित हो जाते है। क्योंकि लगता है कि मृत्यु करीब है। इससे आगे जाने पर मृतयु निशचित है।

यह मृत्यु का भय पकड़ लेता है। और लगता है कि ध्यान के बाहर आना नहीं हो सकेगा।

यही वह क्षण है, ठीक क्षण, जब तुम्हें साहस की जरूरत है। थोड़ा और साहस और तुम तीसरे तल में प्रविष्ट हो जाओगे। यह सबसे गहरा तल है—आत्यंतिक, अनंत।

यह विधि तुम्हें ऊर्जा के जागतिक सागर में आसानी से उतारने में सहयोगी है।

''पूरी तरह थकनें तक घूमते रहो, और तब जमीन पर गिरकर, इस गिरने में पूर्ण होओ।''

और जब तुम जमीन पर गिरते हो तो पहली बार तुम पूर्ण हो जाओगे—अद्वैत, एक कोई विभाजन, कोई द्वैत नही रहेगा। विभाजनों वाला मन विदा हो जाएगा। और पहली बार वह सत्ता प्रकट होगी जो अविभाजित है, अविभाज्य है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—17

तंत्र-सूत्र—विधि—28 (ओशो)

अचानक रूकने की कुछ विधियां:

चौथी विधि:

‘कल्पना करो कि तुम धीरे-धीरे शक्ति या ज्ञान से वंचित किए जा रहे हो। वंचित किए जाने के क्षण में अतिक्रमण करो।‘
इस विधि का प्रयोग किसी यथार्थ स्थिति में भी किया जो सकता है। और तुम ऐसी स्थिति की कल्पना भी कर सकते हो। उदाहरण के लिए लेट जाओ, शिथिल हो जाओ। और भाव करो कि तुम्हारा शरीर मर रहा है। आंखें बंद कर लो और भाव करो कि मैं मर रहा हूं। जल्दी ही तुम महसूस करोगे कि मेरा शरीर भारी हो रहा है। भाव करो: ‘मैं मर रहा हूं, मैं मर रहा हूं, मैं मर रहा हूं।‘
अगर भाव प्रामाणिक है तो तुम्हारा शरीर भारी होने लगेगा। तुम्हें महसूस होगा कि मेरा शरीर पत्थर जैसा हो गया है। तुम अपने हाथ हिलाना चाहोगे। लेकिन हिला नहीं पाओगे, क्योंकि वह इतना भारी और मुर्दा हो गया है। भाव किए जाओ कि मैं मर रहा हूं। मैं मर रहा हूं, मैं मर रहा हूं। और जब तुम्हें मालूम हो कि अब वह क्षण आ गया है, एक छलांग और कि मैं मर जाऊँगा। तब शरीर को भूल जाओ और अतिक्रमण करो।

‘कल्पना करो कि तुम धीरे-धीरे शक्ति या ज्ञान से वंचित किए जा रहे हो। वंचित किए जाने के क्षण में, अतिक्रमण करो।‘

जब तुम अनुभव करते हो कि शरीर मृत हो गया है, तब अतिक्रमण करने का क्या अर्थ है? शरीर को देखो। अब तक तुम भाव करते रहे थे कि मैं मर रहा हूं। अब शरीर मृत बोझ बन गया है। शरीर को देखा। भूल जाओ कि मर रहा हूं। अब द्रष्टा हो जाओ। शरीर मृत पडा है और तुम उसे देख रहे हो। अतिक्रमण घटित हो जाएगा। तुम अपने मन से बाहर निकल जाओ; क्योंकि मृत शरीर को मन की जरूरत नहीं होती। मृत शरीर इतना विश्राम में होता है कि मन की प्रक्रिया ही ठहर जाती है। तुम हो, शरीर भी है; लेकिन मन अनुपस्थित है।

स्मरण रहे, मन की जरूरत जीवन के लिए नहीं है। मृत्यु के लिए नहीं है। अगर तुम्हें अचानक पता चले कि मैं एक घंटे के अंदर मर जाऊँगा तो उस एक घंटे के अंदर तुम क्या करोगे। एक घंटा बचा है। और निश्चित है कि एक घंटे बाद, ठीक एक घंटे बाद तुम मर जाओगे। तो तुम क्या करोगे?

तुम्हारा विचार बिलकुल बंद हो जाएगा। क्योंकि सब विचारना अतीत से या भविष्य से संबंधित है। तुम एक घर खरीदने की सोच रहे थे। या एक कार खरीदना चाहते थे। या हो सकता है कि तुम किसी से विवाह की योजना बना रहे थे। या किसी को तलाक देना चाहते थे। तुम बहुत सी बातें सोच रहे थे। और वह सतत तुम्हारे मन पर भारी थी। अब जब कि सिर्फ एक घंटा हाथ में है तब न विवाह का कोई अर्थ है और न तलाक का। अब तुम सारी योजना उनके लिए छोड़ सकते हो जो जीने वाले है।

मृत्यु के साथ आयोजन समाप्त हो जाता है। मृत्यु के साथ चिंता समाप्त हो जाती है। क्योंकि हर आयोजन हर चिंता जीवन से संबधित है। कल तुम जीओगे, इसी कारण से चिंता होती है। और यही कारण है कि जो लोग ध्यान सिखते है वह सतत कहते है कि कल की मत सोचो। जीसस अपने शिष्यों से कहते थे कि कल की मत सोचो। क्योंकि कल की सोचोगे तो तुम ध्यान में नहीं उतर पाओगे। तुम चिंता में उतर जाओगे।

लेकिन हमें चिंताओं से इतना लगाव है कि हम कल की ही नहीं सोचते; आने वाले जन्म तक कि चिंता करते है। हम इस जीवन की ही नहीं सोचते आने वाले जीवन का भी आयोजन करते है। मृत्यु के बाद के जीवन की भी चिंता रहती है।

एक दिन मैं सड़क से गुजर रहा था कि किसी ने एक पुस्तिका मेरे हाथ में थमा दी। उसके मुख पृष्ठ पर एक बहुत ही सुंदर मकान का चित्र बना था। और उसके साथ ही एक सुंदर बग़ीचा भी था। वह सुंदर था। अद्भुत रूप से सुंदर था। और बड़े-बड़े

अक्षरों में यह प्रश्न लिखा था; क्या तुम एकसा सुंदर घर और ऐसा सुंदर बग़ीचा चाहते हो? और वह भी बिना मूल्य के ''मुफ्त''।

मैंने उस किताब को उलट-पुलट कर देखा; वह घर और बग़ीचा इस दुनियां के नहीं थे। वह ईसाइयों की पुस्तिका थी। उसमें लिखा था कि अगर तुम्हें ऐसे सुंदर घर और बगीचे की चाह है तो जीसस में विश्वास करो। जो लोग उनमें विश्वास करते है उन्हें प्रभु के राज्य में ऐसे घर मुफ्त में मिलते है।

मन कल की ही नहीं सोचता, वरन मृत्यु के बाद की भी सोचता है; वह अगले जन्मों के लिए भी व्यवस्था और आरक्षण करता रहता है। ऐसा मन धार्मिक नहीं हो सकता। धार्मिक मन कल की चिंता नहीं करता है। इसलिए जो लोग जन्मों की चिंता करते है वि सतत सोचते रहते है। कि परमात्मा उनके साथ कैसा व्यवहार करेगा। चर्चिल मर रहा था और किसी ने उससे पूछा; 'तुम स्वर्ग में परम पिता से मिलने को तैयार हो?' चर्चिल ने कहा: 'वह मेरी चिंता नहीं है; मुझे तो यह चिंता है कि परम पिता मुझसे मिलने को तैयार है?' चाहे जो भी ढंग हो, तुम चिंता भविष्य की ही करते हो।

बुद्ध ने कहा है कि कोई स्वर्ग नहीं है और न कोई भावी जीवन है। और उन्होंने यह भी कहा है कि आत्मा नहीं है। और तुम्हारी मृत्यु समग्र ओर पूरी होगी। कुछ भी नहीं बचेगा।

इस पर लोगों ने सोचा कि बुद्ध नास्तिक है। वे नास्तिक नहीं थे। वे एक स्थिति पैदा कर रहे थे। जिसमें तुम कल को भूल जाओ और एक क्षण में, यहां और अभी जी सको। तब ध्यान बहुत सरल हो जाता है।

तो अगर तुम मृत्यु की सोच रहे हो—वह मृत्यु नहीं जो भविष्य में आएगी। तो जमीन पर लेट जाओ। मृतवत हो जाओ। शिथिल हो जाओ और भाव करो कि मैं मर रहा हूं, मैं मर रहा हूं। मैं मर रहा हूं। यह सिर्फ सोचो ही नहीं शरीर के एक-एक अंग में, शरीर के एक-एक तंतु में इसे अनुभव करो। मृत्यु को अपने भीतर सरकने दो यह एक अत्यंत सुंदर ध्यान –विधि है। और जब तुम समझो कि शरीर मृत बोझ हो गया है और जब तुम अपना हाथ या सिर भी नहीं हिला सकते, जब लगे कि सब कुछ मृतवत हो गया; तब एकाएक अपने शरीर को देखो तब मन वहां नहीं होगा। तब तुम देख सकते हो। तब सिर्फ तुम होगे चेतना होगी।

अपने शरीर को देखा। तुम्हें नहीं लगेगा कि यह तुम्हारा शरीर है। बस एक शरीर है। कोई शरीर, ऐसा लगेगा। अगर मन न हो, अनुपस्थिति हो, तो तुम नहीं कहोगे कि मैं शरीर हूं। या शरीर के बाहर हूं। तुम महज होगे। भीतर और बाहर नहीं होगे। भीतर और बाहर सापेक्ष शब्द खड़े होगे। तुम शरीर में नहीं होगे।

ध्यान रहे, मन के कारण ही अहं भाव उठता है कि मैं शरीर हूं। यह भाव कि मैं शरीर हूं मन के कारण है। अगर मन न हो, अनुपस्थित हो, तो तुम नहीं कहोगे। कि मैं शरीर हूं या शरीर के बाहर हूं। तुम महज होगे। भीतर और बाहर नहीं होगे। भीतर और बाहर सापेक्ष शब्द है। जो मन से संबंधित है। तब तुम मात्र साक्षी रहोगे। यही अतिक्रमण है।

तुम यह प्रयोग कई ढंगों से कर सकते हो। कभी-कभी वास्तविक स्थितियों में भी यह प्रयोग संभव है। तुम बीमार हो और तुम्हें लगता है कि अब कोई आशा न बची। मृत्यु निश्चित है। यह बहुत उपयोगी स्थिति है। ध्यान के लिए इसका उपयोग किया जा सकता है।

और दूसरे ढंगों से भी इसका उपयोग कर सकते हो। कल्पना करो कि धीरे-धीरे तुम्हारी शक्ति क्षीण हो रही है। लेट जाओ और भाव करो कि समस्त अस्तित्व मेरी शक्ति को चूस रहा है। चारों और से मेरी शक्ति चूसी जा रही है। और शीध्र ही में नि:सत्व हो जाऊँगा। सर्वथा बलहीन हो जाऊँगा; मेरे भीतर कुछ भी नहीं बचेगा।

और जीवन ऐसा ही है। तुम चूसे जा रहे हो। तुम्हारे चारों और की चीजें तुम्हें चूस रही है। और एक दिन तुम मुर्दा हो जाओगे। सब कुछ चूस लिया जाएगा। जीवन तुम से जा चुकेगा और केवल शव पडा रह जायेगा।

इस क्षण भी तुम यह प्रयोग कर सकते हो। कल्पना कर सकते हो। लेट जाओ और भाव करो कि ऊर्जा चूसी जा रही है। थोड़े ही दिनों में तुम्हें साफ होने लगेगा। कि कैसे ऊर्जा बाहर जाती है। और जब तुम समझो कि सारी ऊर्जा बाहर निकल गई है, भीतर कुछ नहीं बची है, तब अतिक्रमण कर जाओ।

'वंचित किए जाने के क्षण में, अतिक्रमण करो।'

जब ऊर्जा का अंतिम कण तुम से बाहर जा रहा है। अतिक्रमण कर जाओ द्रष्टा हो जाओ मात्र साक्षी। तब यह जगत और यह शरीर दोनों तुम नहीं हो। तुम बस देखने वाले हो।

यह अतिक्रमण तुम्हें तुम्हारे मन के बाहर ले जाएगा। यह कुंजी है। और तुम अपनी पसंद के मुताबिक कई ढंगों से यह प्रयोग कर सकते हो। उदाहरण के लिए, हम लोग दौड़ने की बात कर रहे थे। उसमें ही अपने को थका दें। दौड़ते जाओ। खुद मत रुको। शरीर को अपने आप ही गिरने दो। जब शरीर का जर्रा-जर्रा थक जाएगा, तुम गिर पड़ोगे। और जब तुम गिर रह हो तभी सजग हो जाओ। सिर्फ देखो कि शरीर गिर रहा है।

कभी-कभी चमत्कारपूर्ण घटना घटती है। तुम खड़े रहते हो, शरीर गिर गया है, और तुम उसे देख सकते हो। तुम देख सकते हो, क्योंकि शरीर ही गिरा है और तुम खड़े हो। शरीर के साथ मत गिरो। चारों तरफ घूमों, दौड़ों, नाचो, शरीर को थका डालों। लेकिन ध्यान रहे, तुम्हें लेटना नहीं है। क्योंकि उस हालत में आंतरिक चेतना भी शरीर के साथ गति करके लेट जाती है। इसलिए लेटना नहीं है। तुम चलते ही चलो, जब तक कि शरीर अपने आप ही न गिर जाए। तब शरीर शव की तरह गिर जाता है। और तुरंत तुम्हें दिखाई देता है कि शरीर गिर रहा है और तुम कुछ नहीं कर सकते है।

उसी क्षण आँख खोलों, सजग हो जाओ। चूको मत। जागरूक होकर देखो कि क्या हो रहा है। हो सकता है। तुम खड़े हो और शरीर गिर पडा है। एक बार यह जान लो कि फिर तुम यह कभी न भूलोंगे कि मैं इस शरीर से पृथक हूं।

अंग्रेजी के शब्द 'एक्स्टसी' का यही अर्थ है। बाहर खड़ा होना। एक्स्टसी अर्थात बाहर खड़ा होना। अंग्रेजी में एक्स्टसी का प्रयोग समाधि के लिए होता है। और एक बार तुम समझ लो कि तुम शरीर के बाहर हो तो उस क्षण मन नहीं रह सकता। क्योंकि मन ही वह सेतु है जिससे यह भाव पैदा होता है कि मैं शरीर हूं। अगर तुम एक क्षण के लिए भी शरीर के बाहर हुए तो उस क्षण में मन नहीं रहेगा।

यह अतिक्रमण है। अब तुम शरीर में वापस हो सकते हो, मन में भी वापस हो सकते हो; लेकिन अब तुम इस अनुभव को नहीं भूल सकोगे। यह अनुभव तुम्हारे अस्तित्व का भाग बन गया है। यह सदा तुम्हारे साथ रहेगा।

इस प्रयोग को प्रतिदिन करो। और इस सरल प्रक्रिया से बहुत कुछ घटित होता है।

मन को लेकिन पश्चिम सदा चिंतित रहता है और उनके उपाय भी करता है। लेकिन अब तक कोई उपाय काम करता नजर नहीं आता। हरेक चीज फैशन बनकर समाप्त हो जाती है। मनोविश्लेषण अब एक मृत आंदोलन है। उसकी जगह नए आंदोलन आ गए है—एनकांउटर समूह है, समूह मनोविज्ञान है, कर्म मनोविज्ञान है—और भी ऐसी ही चीजें है। लेकिन वे फैशन की तरह आती है और चली जाती है। क्यो?

इसलिए कि मन के भीतर तुम ज्यादा से ज्यादा व्यवस्था ही बिठा सकते हो। आरे ये व्यवस्थाएं बार-बार उपद्रव में पड़ेगी। मन की व्यवस्था, उसके साथ समायोजन करना रेत पर घर बनाने जैसा है। ताश का घर बनाने जैसा है। वह घर सदा हिलता रहेगा। और यह डर सदा रहेगा कि अब गिरा तब गिरा। वह किसी भी क्षण गिर सकता है।

आंतरिक रूप से सुखी और स्वस्थ होने के लिए, संपूर्ण होने के लिए मन के पार जाना ही एकमात्र उपाय है। तब तुम मन में भी लौट सकते हो। और उसे उपयोग में भी ला सकते हो। तब मन यंत्र का काम करता है। और तुम उससे तादात्म्य नहीं रखते।

तो दो चीजें है। एक कि मन के साथ तुम्हारा तादात्म्य है। तंत्र के लिए यही रूग्णता है। दूसरे, मन के साथ तुम्हारा तादात्म्य नहीं रहा; तुम उसे यंत्र की तरह काम में लाते हो। तब तुम स्वस्थ और संपूर्ण हो।

ओशो

विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—17

तंत्र-सूत्र—विधि—28 (ओशो)

तंत्र-सूत्र—विधि—29 (ओशो)

अचानक रूकने की कुछ विधियां:

तंत्र-सूत्र—विधि—29 (ओशो)
''भक्ति मुक्त करती है।''

पांचवी विधि:

थोड़े से शब्दों की यह विधि एक अर्थ में बहुत सरल है और दूसरे अर्थ में अत्यंत कठिन। यह पांचवी विधि कहती है:

''भक्ति मुक्त करती है।''
थोड़े से शब्द: भक्ति मुक्त करती है। सच में तो यह एक ही शब्द है। क्योंकि ''मुक्त करती है।'' भक्ति का परिणाम है। भक्ति का क्या मतलब है।

विज्ञान भैरव तंत्र में दो कोटि की विधियां है। एक कोटि उनके लिए है जो मस्तिष्क प्रधान है। विज्ञानोन्मुख है। और दूसरी उनके लिए है जो ह्रदय प्रधान है। भावोन्मुख है, कवि है। और दो ही तरह के मन है—वैज्ञानिक मन और काव्यात्मक मन। और इनमें जमीन आसमान का अंतर है। वे एक दूसरे से की नहीं मिलते है। मिलन असंभव है। कभी-कभी वे समानांतर चलते है। लेकिन मिलते कही नहीं।

कभी-कभी ऐसा होता है कि कोई आदमी कवि भी है और वैज्ञानिक भी। यह दुर्लभ घटना है। कोई व्यक्ति कवि और विज्ञानी दोनो हो। तब उसका व्यक्तितत्व खंडित होगा। तब वह यथार्थ में दो होगा, एक नहीं। जब वह कवि होता है तब वैज्ञानिक नहीं होता। अन्यथा उसका वैज्ञानिक उपद्रव करेगा। और जब वह वैज्ञानिक होता है तो अपने कवि को बिलकुल भूल जाता है। और

तब वह दूसरे जगत में प्रवेश करता है—जो धारण, विचार, तर्क, बुद्धि और गणित का जगत है। वह जगत ही अलग है। और जब वह कविता के जगत में विचारण करता है तो वह गणित नहीं, संगीत होता है। वहां धारणाएं नहीं होती, वहां शब्द होते है। लेकिन तरल शब्द, ठोस नहीं। वहां एक शब्द दूसरे शब्द में प्रवेश कर जाता है। वहां एक शब्द के अनेक अर्थ हो सकते है। और हो सकता है कोई भी अर्थ न हो। वहां व्याकरण खो जाता है। सिर्फ काव्य रहता है। यह और ही दुनिया हे।
विचारक और भावुक, ये दो कोटियां है। पहली विधि, जिसकी चर्चा अभी मैंने की, वैज्ञानिक मन के लिए थी। ''भक्ति मुक्त करती है।'' भावुक मन के लिए है। और याद रहे कि तुम्हें अपनी कोटी खोज लेनी है। कोई भी कोटी छोटी या बड़ी नहीं है। यह मत सोचो की बौद्धिक मन श्रेष्ठ है। या भावुक मन श्रेष्ठ है। नहीं वे सिर्फ कोटियां है। ऊंच-नीच की कोई बात नहीं है। इसलिए खोजों कि तुम्हारी कोटि तथ्यतः: क्या है।

दूसरी विधि भावुक कोटि के लोगो के लिए है। क्यों? क्योंकि भक्ति किसी और के प्रति होती है। और भक्ति अंधी होती है। भक्ति में दूसरा तुमसे ज्यादा महत्वपूर्ण होता है। यह श्रद्धा है। बुद्धिवादी किसी पर श्रद्धा नहीं कर सकता है। वह सिर्फ आलोचना कर सकता है। श्रद्धा नहीं। वह संदेह कर सकता है। भरोसा नहीं। और अगर कभी कोई बुद्धि प्रधान व्यक्ति आस्था के निकट आता है तो उसकी आस्था प्रामाणिक नहीं होती।

पहली बात तो यह कि वह किसी तरह अपनी आस्था के संबंध में अपने को राज़ी करता है। ऐसी आस्था कभी प्रामाणिक नहीं होती। वह प्रमाण खोजता है। दलील खोजता है। और वह पाता है कि दलीलें ठोस है, तो ही विश्वास करता है। लेकिन यही वह चूक जाता है। क्योंकि आस्था तर्क नहीं करती है और न आस्था प्रमाणों पर आधारित है। अगर प्रमाण उपलब्ध है। तो आस्था की जरूरत क्या है।

तुम सूरज में विश्वास नहीं करते हो, तुम आसमान में विश्वास नहीं करते हो, तुम बस उन्हें जानते हो। सूरज उग रहा है। इसमें विश्वास करने की क्या बात है? अगर कोई तुमसे पूछे कि क्या तुम सूरज उग रहा है। इसमें विश्वास करते हो, तो तुम यह नहीं कहते कि हां, मैं विश्वास करती हू और एक बड़ा विश्वासी हूं। तुम यही कहती हो कि सूरज उग रहा है। और मैं यह जानता हूं। विश्वास या अविश्वास का प्रश्न की नहीं है। क्यों ऐसा व्यक्ति भी है जिसे सूरज में विश्वास हो? ऐसा कोई नहीं है।

श्रद्धा का अर्थ है: बिना किसी प्रमाण के अज्ञात में छलांग।

यह कठिन है, बौद्धिक कोटि के मनुष्य के लिए यह कठिन है। क्योंकि तब पूरी चीज बेतुकी हो जाती है। पागलपन की हो जाती है। पहले प्रमाण चाहिए। अगर तुम कहते हो कि ईश्वर है और उसके प्रति समर्पण करना है, तो पहले ईश्वर को सिद्ध करना होगा।

लेकिन तब ईश्वरा एक प्रमेय हो जाता है; सिद्ध तो हो जाता है। पर व्यर्थ हो जाता है। ईश्वर को असिद्ध ही रहना है; अन्यथा वह किसी काम का न रहेगा। क्योंकि तब श्रद्धा अर्थहीन हो जाती है। अगर तुम एक सिद्ध किए हुए ईश्वर में विश्वास करते हो तो तुम्हारा ईश्वर ज्यामिति का एक प्रमेय मात्र है। कोई यूक्लिड के प्रेमियों में विश्वास नहीं करता; उसकी जरूरत नहीं थी। वह प्रमेय सिद्ध किए जा सकते है। और जो सिद्ध किया जा सकता है वह श्रद्धा के लिए आधार नहीं हो सकता।

एक अत्यंत रहस्यवादी ईसाई संत तरतुलियन ने कहा है कि मैं ईश्वर में इसलिए विश्वास करता हूं क्योंकि वह बेतुका है। अविश्वासी है। और यह ठीक कहता है। भावुक लोगों की दृष्टि यही है। तरतुलियन कहता है कि चूंकि उसे सिद्ध नहीं किया जा सकता इसलिए मैं ईश्वर में विश्वास करता हूं।

और वह एक अर्थ में सही है; क्योंकि श्रद्धा का अर्थ है। किन्हीं कारणों के बिना अज्ञात में छलांग। और सिर्फ भावपूर्ण व्यक्ति ही यह कर सकता है।

भक्ति को छोड़ो; पहले प्रेम को समझो और तब तुम भक्ति को भी समझ सकोगे।

तुम किसी के प्रेम में पड़े हुए हो। अंग्रेजी में इसे फालिंग इन लव—प्रेम में गिरना कहते है। हम प्रेम में गिरना क्यों कहते है। कुछ नहीं गिरता है सिर्फ तुम्हारा सिर गिरता है। प्रेम में सिर के सिवाय और क्या गिरता है। तुम अपने सिरा से नीचे गिर जाते हो। इसी से हम इसे ''प्रेम में गिरना'' कहते है। भाषा बौद्धिक कोटि के लोग निर्मित करते है। उनके लिए प्रेम पागलपन है। विक्षिप्तता है। कोई प्रेम में गिर गया है। इसका मतलब हुआ कि अब वह कुछ भी कर सकता है। अब वह पागल हो गया है। बुद्धि उसे काम न आएगी। तुम उसके साथ तर्क न कर सकोगे। क्या तुम किसी प्रेमी के साथ तर्क कर सकते हो। लोग चेष्टा करते है। लेकिन कुछ हाथ नहीं आता।

तुम किसी के प्रेम में पड़ गए हो। हर कोई कहता है कि यह तुम्हारे योग्य नहीं है। या कि तुम मुसीबत मोल ल रहे हो, या कि तुम मुर्ख बन रहे हो, और इससे अच्छा प्रेम पात्र मिल सकता था। लेकिन यह सब कहने का तुम पर कोई असर न होगा। कोई दलील काम न आएगी। तुम प्रेम में हो; अब बुद्धि व्यर्थ हो गई। प्रेम की अपनी तर्क सरणी है।

दो प्रेमी मौन हो जाते है। और जब दो प्रेमी फिर बातचीत करने लग जाते है तो समझ लेना कि प्रेम विदा हो चुका है। कि वे फिर अजनबी हो गए है। जाओ और पति-पत्नियों को देखो। जब वे अकेले होते है तो वे किसी भी चीज के बारे में बातचीत करते रहते है। और वह दोनों जानते है कि बातचीत गैर-जरूरी है। लेकिन चुप रहना कितना कठिन है। इसलिए किसी क्षुद्र सी बात पर भी बात किए जाओ। ताकि संवाद चलता रहे।

लेकिन दो प्रेमी मौन हो जाये भाषा खो जायेगी; क्योंकि भाषा बुद्धि की चीज है। शुरूआत तो बच्चों जैसी बातचीत से होगी। लेकिन फिर वह नहीं रहेगी। तब वे मौन में संवाद करेंगे। उनका संवाद क्या है। उनका संवाद अतर्क्य है। वे अस्तित्व के एक भिन्न आयाम के साथ लयवद्ध हो जाते है। और वे उस लयबद्धता में सुखी अनुभव करते है। और अगर तुम उनसे पूछो कि उनका सुख क्या है तो वे उसे प्रमाणित नहीं कर सकते।

सेक्स और प्रेम में यही भेद है। अगर सिर्फ दो शरीर एक होते हों तो बहुत अड़चन नहीं है और उसमें पीड़ा भी नहीं है। यह बहुत सरल बात है; कोई पशु भी कर सकता है। लेकिन जब दो व्यक्ति प्रेम में मिलते है तो कठिनाई है, बहुत कठिनाई है। क्योंकि तब दो मनों को विसर्जित होना पड़ता है। अनुपस्थित होना पड़ता है। तभी वह स्थान निर्मित होता है। जिसमे प्रेम का फूल खिल सके।

प्रेम में होता क्या है? प्रेम में दूसरा महत्वपूर्ण हो जाता है। तुमसे ज्यादा महत्वपूर्ण। चीजें मेरे चारों और घूमती है। और मेरे लिए घूमती है। और केंद्र मैं हूं। बुद्धि सदा इसी भांति काम करती है।

तर्क सदा स्व-केंद्रित होता है। मन सदा अहं-केंद्रित होता है। मैं केंद्र हूं और शेष सब चीजें मेरे चारो और घूमती है, और मेरे लिए घूमती है। लेकिन केंद्र मैं हूं। बुद्धि सदा सी भांति काम करती है।

अगर तुम बुद्धि के साथ बहुत दूर तक चलोगे तो तुम उसी निष्कर्ष पर पहुंचोगे जिस पर बर्कले पहुंचा था। उसने कहा: केवल मैं हूं और शेष सब चीजें मेरे मन की धारणाएं भर है। मैं कैसे सिद्ध कर सकता हूं कि तुम सचमुच हो? हो सकता है, कि तुम बिलकुल न होओ। तुम एक सपना होओ। और मैं भी एक सपना होऊं और सपने में ही बोल रहा हूं। और हो सकता है कि तुम बिलकुल न होओ। मैं कैसे अपने को समझाऊं कि तुम सचमुच हो? हालांकि मैं तुमको छू सकता हूं लेकिन ऐसा छूना तो सपना में भी होता है। और सपने में भी मुझे किसी के छूने पर छूने की अनुभूति होती है। मैं तुम्हें चोट कर सकता हूं। और तुम रोओगे, लेकिन ऐसे में सपने में भी किसी को चोट कर मैं उस स्वप्न के व्यक्ति को रुला सकता हूं। यह भेद कैसे किया जाए कि जो व्यक्ति मेरे सामने है वह स्वप्न नहीं यथार्थ है? हो सकता है, वह काल्पनिक हो।

हृदय का मार्ग इसके विपरीत है। मैं खो जाता हूं और दूसरा प्रेम-पात्र यथार्थ हो जाता है। अगर तुम प्रेम को उसकी पराकाष्ठा पर पहुंचा दो तो वह भक्ति हो जाता है। अगर तुम्हारा प्रेम इस चरम बिंदु पर पहुंच जाए कि जहां तुम बिलकुल भूल जाओ कि मैं हूं। जहां तुम्हें अपना होश न रहे, और जहां दूसरा ही रह जाए, तो वही भक्ति है।

प्रेम भक्ति बन सकता है। प्रेम पहला चरण है, तभी भक्ति का फूल खिलता है। लेकिन हमारे लिए तो प्रेम भी दूर का तारा है। हमारे लिए सेक्स या काम ही सच्चाई है।

प्रेम की दो संभावनाएं है। प्रेम अगर नीचे गिरे तो काम बन जाता है। शारीरिक रह जाता है। और अगर प्रेम ऊपर उठे तो भक्ति बन जाता है। आत्मा की चीज बन जाता है। प्रेम दोनों के बीच में है। प्रेम के नीचे सेक्स का पाताल है। और उसके उपर भक्ति का अनंत आकाश है।

यदि तुम्हारा प्रेम गहरा हो तो दूसरा ज्यादा-ज्यादा अर्थपूर्ण हो जाता है—वह इतना अर्थपूर्ण हो जाता है कि तुम उसे अपना भगवान कहने लगते हो। यही कारण है कि मीरा कृष्ण को प्रभु कहे चली जाती है। न कृष्ण को कोई देख सकता है , न मीरास सिद्ध कर सकती है कि कृष्ण वहां है। लेकिन मीरा इसे सिद्ध करने में उत्सुक नहीं है। मीरा ने कृष्ण को अपना प्रेम-पात्र बना लिया है।

और याद रहे, तुम किसी यथार्थ व्यक्ति को अपना प्रेम पात्र बनाते हो या किसी कल्पना के व्यक्ति को, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। कारण यह है कि सारा रूपांतरण भक्ति के माध्यम से आता है। प्रेम-पात्र के माध्यम से नहीं। इस बात को सदा स्मरण रखो। कृष्ण नहीं भी हो सकते है। यह अप्रासंगिक है। प्रेम के लिए अप्रासंगिक है।

''भक्ति मुक्त करती है।''

इसलिए हमें प्रेम में ही स्वतंत्रता की झलक मिलती है। जब तुम प्रेम में होते हो तो तुम्हें सूक्ष्म ढंग की स्वतंत्रता का अहसास होता है। यह विरोधाभासी है; क्योंकि दूसरे तो वही देखेंगे कि तुम गुलाम हो गए हो। अगर तुम किसी के प्रेम में हो तो तुम्हारे इर्द-गिर्द के लोग सोचेंगे कि तुम एक दूसरे के गुलाम हो गए हो। लेकिन तुम्हें स्वतंत्रता की झलकें मिलने लगेंगी।

प्रेम मुक्ति है। क्यो? इसलिए कि अहंकार ही बंधन है। और कोई बंधन नहीं है। कल्पना करो कि तुम कारागृह में हो और उसके बाहर निकलने का कोई उपाय नहीं है। लेकिन तुम्हारी प्रेमिका उस कारागृह में पहूंच जाये तो वह कारागृह तत्क्षण खो जायेगा। दीवारें तो जहां की ताह होंगी। लेकिन अब तुम्हें कैद न कर सकेंगी। तुम उन्हें बिलकुल भूल जा सकते हो। तुम एक दूसरे में डूब सकते हो और तुम एक दूसरे के उड़ने के लिए आकाश बन जा सकते हो। कारागृह विलीन हो गया; वह कारागृह अब कारागृह न रहा।

और यह भी हो सकता है कि तुम खुले आकाश के नीचे हो सर्वथा बंधनहीन, सर्वथा मुक्त; लेकिन न हो कि कारागृह में ही हो। क्योंकि तब तुम्हारे उड़ने के लिए आकाश न रहा। यह बाहर का आकाश काम न देगा। इस आकाश में पक्षी उड़ते है; लेकिन तुम न उड़ सकोगे। तुम्हारे उड़ने के लिए एक भिन्न्न आकाश की जरूरत है। चेतना के आकाश में जरूरत है। कोई दूसरा हूं तुम्हें वह आकाश दे सकता है। उसका पहला स्वाद दे सकता है। जब दूसरा तुम्हारे लिए अपने को खोलना है तो तुम उसमें प्रवेश करते हो, तभी तुम उड़ सकते हो।

प्रेम स्वतंत्रता है। लेकिन समग्र स्वतंत्रता नहीं। जब प्रेम भक्ति बनता है तो ही वह समग्र स्वतंत्रता बनता है। उसका मतलब है कि तुम पूर्णरूपेण समर्पण कर दिया।

इसलिए ये सूत्र भक्ति मुक्त करती है। उनके लिए जो भाव प्रधान है। रामकृष्ण को लो। अगर राम कृष्ण को देखो तो तुम्हें लगेगा कि वे काली के, मां के गुलाम है। वे उसकी आज्ञा के बिना कुछ भी नहीं करते सकते है। लेकिन उनसे ज्यादा कौन स्वतंत्र हो सकता है।

रामकृष्ण जब पहले-पहले दक्षिणेश्वर मंदिर के पुजारी नियुक्त हुए तो उनका रंग-ढंग ही हैरान करने वाला था। मंदिर के ट्रस्टियों ने बैठक बुलायी और कहा के इस आदमी को निकाल बाहर करो। यह तो अभक्त जैसा व्यवहार करता है। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि रामकृष्ण पहले खुद फूल को सूँघते और तब उसे काली के चरणों में चढ़ाते। लेकिन यह बात कर्मकांड के विपरीत हो जाती है। सूंघा हुआ फूल देवी-देवताओं को नहीं चढ़ाया जा सकता ; वह तो झूठा हो गया। अशुद्ध हो गया। रामकृष्ण पहले खुद चखते थे। फिर काली को भोग लगाते थे। और वे पुजारी थे। तो ट्रस्टियों ने कहा कि ऐसा नहीं चल सकता है।

रामकृष्ण ने ट्रस्टियों को जवाब दिया कि तब मुझे काम से मुक्त कर दो। मैं मंदिर से निकल जाना पसंद करूंगा। लेकिन मैं चखे बीन मां को भोग नहीं लगा सकता हूं। मेरी मां ऐसा ही करती थी। जब भी वह कुछ भोजन बनाती थी तो पहले खुद चखती थी। तब मुझे खिलाती थी। मैं सूंघ बिना कोई फूल नहीं चढ़ा सकता। मैं निकल जाने के राज़ी हूं। और तुम मुझे रोक नहीं सकते। मैं कहीं भी पूजा कर लुंगा। क्योंकि मां सर्वत्र है। वह तुम्हारे मंदिर में ही सीमित नहीं है। मैं जहां भी जाऊँगा इसी तरह मां की पूजा करता रहूंगा।

ऐसा हुआ कि किसी मुसलमान ने रामकृष्ण से कहा कि अगर आपकी काली सर्वत्र है तो आप हमारी मस्जिद में क्यों नहीं आते। उन्होंने कहा कि ठीक है, मैं आऊँगा। और वे छह महीने मस्जिद में रहे। वे दक्षिणेश्वर को पूरी तरह से भूल गये। और मस्जिद के ही होकर रह गये। तब उनके मित्रों ने आग्रह किया की अब तो बहुत दिन हो गये घर चलो। और उन मित्र ने कहां की आप सही है। और अब आप जा सकते है, सही में मां हर जगह है।

कोई सोच सकता है कि रामकृष्ण गुलाम है; लेकिन उनकी भक्ति ऐसी प्रगाढ़ है कि अब प्रेम-पात्र सब जगह है। जब तुम नहीं होते तो प्रेम-पात्र सर्वत्र होता है। और जब तुम होते हो तो प्रेम-पात्र कहीं नहीं होता।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—17

तंत्र-सूत्र—विधि—30 (ओशो)

देखने के संबंध में कुछ विधियां:

विज्ञान भैरव तंत्र, विधि–30 देखने की कुछ विधिया

''आंखें बंद करके अपने अंतरस्थ अस्तित्व को विस्तार से देखो। इस प्रकार अपने सच्चे स्वभाव को देख लो।''

''आंखें बंद करके......।''
अपनी आंखें बंद कर लो। लेकिन आंखे बंद करना ही काफी नहीं है। समग्र रूप से बंद करना है। उसका अर्थ है कि आँखो को बंद करते उनकी गति भी रोक दो।

अन्यथा आंखें बाहर की ही चीजें देखती रहेगी। बंद आंखें भी चीजों को चीजों के प्रतिबिंबों को देखती है। असली चीजें तो नहीं रहती। लेकिन उनके चित्र, विचार, संचित यादें तब भी सामने तैरती रहेंगी। ये चित्र ये यादें भी बाहर की है। इसलिए जब ते वे तैरती रहेगी तब तक आंखों को समग्ररूपेण बंद मत समझो। समग्र रूप से बंद होने का अर्थ है कि अब देखने को कुछ भी नहीं है।
इस फर्क को ठीक सक समझ लो। तुम अपनी आंखें बद कर सकते हो; वह आसान है। हर कोई हर क्षण आंखें बंद करता है। रात में भी तुम आंखें बंद रखते हो। लेकिन इससे अंतरस्थ स्वभाव प्रकट नहीं हो जाएगा। आंखें ऐसे बंद करो कि देखने को कुछ भी न बचे—न बाहर का विषय बचे न भीतर का विषय बचे। तुम्हारे सामने बस खाली अँधेरा रह जाए, मानो तुम अचानक अंधे हो गए हो—यथार्थ के प्रति ही नहीं, स्वप्न–यथार्थ के प्रति भी।

इसमे अभ्यास की जरूरत पड़ेगी—एक लंबे अभ्यास की जरूरत पड़ेगी। यह अचानक संभव नहीं है। एक लंबे प्रशिक्षण की जरूरत है। आंखें बंद कर लो जब भी तुम्हें लगे कि यह आसानी से किया जा सकता है और जब भी तुम्हें समय हो आंखें बंद कर लो। और आंखों की सभी भीतरी हलन-चलन को भी बंद कर दो। किसी तरह की भी गति मत होने दो। आंखों की सारी गतिया बंद हो जानी चाहिए। भाव करो कि आंखें पत्थर हो गई है। और तब आंखों की पथराई अवस्था में ठहरे रहो। कुछ भी मत करो; मात्र स्थित रहो। तब किसी दिन अचानक तुम्हें यह बोध होगा कि तुम अपने भीतर देख रहे हो।

यह विधि भीतर से देखने के लिए बहुत सहयोगी है। और यह दर्शन तुम्हारी समग्र चेतना को, तुम्हारे समूचे अस्तित्व को रूपांतरित कर देता है। कारण यह है कि जब तुम अपने को भी भीतर से देखते हो तो तुम तुरंत संसार से भिन्न हो जाते हो। यह झूठा तादात्म्य कि मैं शरीर हूं, इसलिए है कि हम अपने शरीर को बाहर से देखते है। अगर कोई उसे भीतर से देख सके तो

द्रष्टा शरीर से भिन्न हो जाता है। और तब तुम अपनी चेतना को अंगूठे से सिर तक अपने शरीर के भीतर गतिमान कर सकते हो; अब तुम शरीर के भीतर परिभ्रमण कर सकते हो।

और एक बार तुम शरीर को अंदर से देखने और उसमें गति करने में समर्थ हो गए तो फिर बाहर जाना जरा भी कठिन नहीं है। एक बार तुम गति करना सिख गये, एक बार तुम ने जान लिया कि तुम शरीर से पृथक हो, तो तुम एक महा बंधन से मुक्त हो गए। अब तुम पर गुरूत्वाकर्षण की पकड़ न रही। अब तुम्हारी कोई सीमा न रही। अब तुम परिपूर्ण स्वतंत्र हो, अब तुम शरीर के बाहर जा सकते हो। अब बाहर-भीतर होना आसान है। अब तुम्हारा शरीर महज निवास स्थान है।

आंखें बंद करो और अपने अंतरस्थ प्राणी को विस्तार से देखो। और भीतर-भीतर शरीर के अंग-अंग में परिभ्रमण करो। सबसे पहले अंगूठे के पास जाओ। पूरे शरीर को भूल जाओ। और अंगूठे पर पहुंचो। वहां रुको और उसका दर्शन करो। फिर पाँव से होकर ऊपर बढ़ो; और ऐसे प्रत्येक अंग को देखो।

तब बहुत सी बातें घटित होंगी—बहुत बातें। तब तुम्हारा शरीर ऐसा संवेदनशील वाहन बन जाएगा जिसका तुम कल्पना नहीं कर सकते। तब अगर तुम किसी को स्पर्श करोगे तो तुम पूरे अपने हाथ में गति कर जाओगे और वह स्पर्श रूपांतरकारी होगा। गुरु के स्पर्श का यही अर्थ है। गुरु अपने किसी अंग में भी समग्र रूप से पहुंच सकता है। और वहां एकाग्र हो सकता है।

अगर तुम समग्र रूप से अपने किसी अंग कसे चले जाओ तो वह अंग जीवंत हो जाता है। इतना जीवंत कि तुम कल्पना भी नहीं कर सकते। कि उसे क्या हो गया है। तब तुम अपनी आंखों में समग्ररूपेण समा सकते हो। इस तरह आँखो में समाकर अगर तुम किसी दूसरे की आंखों में झांकोगे तो तुम उसमें प्रवेश कर जाओगे उसकी गहनत्म गहराई को छू जाओगे।

गुरु अनेक काम करता है। उनमें से एक बुनियादी काम यह है कि तुम्हारा विश्लेषण करने के लिए तुम में गहरे उतरता है। और वह तुम्हारे अंधेरे तल घरों में प्रवेश करता है। तुम्हें भी अपने इन तल घरों का पता नहीं है। अगर गुरु कहेगा कि तुम्हारे भी तर कुछ चीजें छीपी पड़ी है। तो तुम उसका विश्वास भी नहीं करोगे। कैसे विश्वास करोगे? तुम्हें उनका पता ही नहीं है। तुम अपने मन के एक ही हिस्से को जानते हो। और वह उसका बहुत छोटा हिस्सा है। ऊपरी हिस्सा है। वह उसका पहली पर्त भर है। उसके पीछे नौ पर्तें छिपी है जिनकी तुम्हें कोई खबर नहीं है। लेकिन आंखों के द्वारा उनमें प्रवेश किया जा सकता है।

''आंखें बंद करके अपने अंतरस्थ अस्तित्व को विस्तार से देखो।''

इस दर्शन का पहल चरण, बाहरी चरण अपने शरीर को भीतर से, अपने आंतरिक केंद्र से देखना है। केंद्र पर खड़े हो जाओ और देखो। तब तुम शरीर से पृथक हो जाओगे। क्योंकि द्रष्टा कभी दृश्य नहीं होता है, निरीक्षक अपने विषय से भिन्न होता है। अगर तुम अंदर से अपने शरीर को देख सको तो तुम कभी फिर इस भ्रम में नहीं पड़ोगे कि मैं शरीर हूं। तब तुम सर्वथा पृथक रहोगे। तब तुम शरीर में रहोगे। लेकिन शरीर नहीं रहोगे।

यह पहला चरण है। फिर तुम और गति कर सकते हो। तब तुम गति करने के लिए स्वतंत्र हो। शरीर से मुक्त होकर, तादात्म्य से मुक्त होकर तुम गति करने के लिए मुक्त हो। अब तुम अपने मन में, मन की गहराइयों में प्रवेश कर सकते हो। अब तुम उन नौ पर्तों में, जो भीतर है और अचेतन है, प्रवेश कर सकते हो।

यह मन की अंतरस्थ गुफा है। और अगर मन की गुफा में प्रवेश करते हो तो तुम मन से भी प्रथक हो जाते हो। तब तुम देखोगें कि मन भी एक विषय है जिसे देखा जा सकता है। और जो मन में प्रवेश कर रहा है वह मन से पृथक और भिन्न है।

अंतरस्थ अस्तित्व को विस्तार से देखो इसका यही अर्थ है—मन में प्रवेश करो। शरीर और मन दोनों के भीतर जाना है। और भीतर से उन्हें देखना है। तब तुम केवल साक्षी हो। और इस साक्षी में प्रवेश नहीं हो सकता। इसी से यह तुम्हारा अंतरतम है; यही तुम हो। जिसमें प्रवेश किया जा सकता है। इसी से यह तुम्हारा अंतरतम है; यही तुम हो। जिसमें प्रवेश किया जा सकता है। जिसे देखा जा सकता है। इसी से यह तुम्हारा अंतरतम है; यही तुम हो। जब तुम वहां आ गए जिससे आगे नहीं जाया जा सकता, जिसमें प्रवेश नहीं किया जा सकता, वह तुम नहीं हो। जब तुम वहां आ गए जिससे आगे नहीं जाया जा सकता है। जिस देखा जा सकता है। जिसमें प्रवेश नहीं किया जा सकता। तभी तुम समझना कि तुम अपने सच्चे स्व के पास, अपनी आत्मा के पास पहुंचे।

तुम साक्षी के साक्षी नहीं हो सकते। यह स्मरण रह। यह बात ही बेतुकी है। अगर कोई कहता है कि मैंने अपने साक्षी को देखा है तो वह गलत कहता है। यह बात ही अनर्गल है। यह अनर्गल क्यों है?

यह इसलिए है कि अगर तुम ने साक्षी आत्मा को देख लिया तो वह साक्षी आत्मा साक्षी आत्मा ही नहीं है। साक्षी वह है जिसने उसको देखा है। जिसे तुम देख सकते हो वह तुम नहीं हो। जिसका तुम निरीक्षण कर सकते हो वह तुम नहीं हो। जिसका तुम्हें बोध हो सकता है वह तुम नहीं हो।

लेकिन मन के पार एक बिंदु आता है। जहां तुम मात्र होते हो। बस हो। अब तुम अपने अखंड अस्तित्व को दो में नहीं बांट सकते। दृश्य और द्रष्टा में नहीं बांट सकते।

वहां केवल द्रष्टा है, मात्र साक्षी भाव है। इस बात को बुद्धि से तर्क से समझना बहुत कठिन है। क्योंकि वहां बुद्धि की सभी कोटियां समाप्त हो जाती है।

तर्क की इस कठिनाई के कारण चार्वाक ने, जिसने संसार के एक अत्यंत तर्कपूर्ण दर्शनशास्त्र की स्थापना की। कहा कि तुम आत्मा हो नहीं जान सकते हो, कोई आत्म-ज्ञान नहीं होता। और क्योंकि आत्म-ज्ञान नहीं होता है, इसलिए तुम कैसे कह सकते हो कि आत्मा है। जो भी तुम जानते हो वह आत्मा नहीं है। जो जानता है वह आत्मा है। जो जाना जाता है वह आत्मा नहीं हो सकती है। इसलिए तुम तर्क के अनुसार नहीं कह सकते कि मैंने अपनी आत्मा को जान लिया। वह बेतुका है, तर्कहीन है। तुम अपनी आत्मा को कैसे जान सकते हो? क्योंकि तब कौन जानेगा और किसको जानेगा?

ज्ञान का अर्थ है द्वैत—विषय और विषयी के बीच, ज्ञाता और ज्ञात के बीच। इसलिए चार्वाक कहता है। कि जो लोग कहते है कि हमने आत्मा को जान लिया है वे मूढ़ता की बात करते है। आत्म ज्ञान असंभव है। क्योंकि आत्मा निर्विवाद रूप से जानने वाला है। उसे जाना जाने वाले में बदला नहीं जा सकता। और तब चार्वाक कहता है कि अगर तुम आत्मा को नह जान सकते तो यह कैसे कह सकते हो कि आत्मा है।

चार्वाक जैसे लोग, जो आत्मा के अस्तित्व में विश्वास नहीं रखते, अनात्म वादी कहलाते है। वे कहते है कि आत्मा नह है; जिसे जाना नहीं जा सकता है।

और वे तर्क के अनुसार सही है। अगर तर्क ही सब कुछ है तो वे सही है। लेकिन जीवन का यह रहस्य है कि तर्क सिर्फ आरंभ है, अंत नहीं है। एक क्षण आता है जब तर्क समाप्त हो जाता है। लेकिन तुम समाप्त नहीं होते। एक क्षण आता है जब तर्क खतम हो जाता है, लेकिन तुम तब भी होते हो। जीवन अतर्क्य है। यही कारण है कि यह समझना बहुत कठिन होता है कि सिर्फ साक्षी बचता है।

आकाश को देखो नीला दिखाई देता है। लेकिन आकाश नीला नहीं है। वह कास्मिक किरणों से भरा है। क्योंकि वहां कोई विषय वस्तु नहीं है। इसीलिए आकाश नीला दिखाई देता है। वे किरणें प्रतिबिंबित नहीं कर सकती, तुम्हारी आंखों तक नहीं आ सकती। अगर तुम अंतरिक्ष में जाओ और वहां कोई वस्तु न हो तो तुम्हें वहां अँधेरा ही अँधेरा मालूम होगा। हालाकि तुम्हारे बगल से किरण गुजर रही है। लेकिन तुम्हें अँधेरा ही मालूम होगा। प्रकाश को जानने के लिए विषय वस्तु का होना अनिवार्य है।

तो चार्वाक कहता है कह अगर तुम भीतर जाते हो और उस बिंदू पर पहुंचते हो जहां सिर्फ साक्षी बचता है। और कुछ देखने को नहीं बचता। तो तुम यह बात कैसे जानोंगे? देखने के लिए कोई विषय अवश्य चाहिए। तभी तुम साक्षित्व को जान सकते हो।

तर्क के अनुसार विज्ञान के अनुसार यह सही है। लेकिन यह अस्तित्वत: यही नहीं है। जो लोग सचमुच भीतर प्रवेश करते है वे ऐसे बिंदू पर पहुंचते है जहां मात्र चैतन्य के अतिरिक्त कोई भी विषय नहीं रहता है। तुम हो, लेकिन देखने को कुछ भी नहीं है—मात्र द्दष्टा है। एक मात्र द्दष्टा। अपने आस-पास किसी विषय के बिना शुद्ध विषयी होता है। जिस क्षण तुम इस बिंदू पर पहुंचते हो। तुम अपने अस्तित्व के परम लक्ष्य पर पहूंच गए। उसे तुम आदि कह सकते हो। उसे तुम अंत भी कह सकते हो। वह आदि और अंत दोनों है। वह आत्म-ज्ञान है।

भाषागत रूप से आत्म ज्ञान शब्द गलत है। क्योंकि भाषा में इसके संबंध में कुछ भी नह कहा जा सकता। जब तुम अद्वैत के जगत में प्रवेश करते हो, तो भाषा व्यर्थ हो जाती है। भाषा तभी तक सार्थक है जब तक तुम द्वैत के जगत में हो। द्वैत के जगत में भाषा अर्थ वान है; क्योंकि भाषा द्वैतवादी जगत की कृति है। उसका हिस्सा है। अद्वैत में प्रवेश करते ही भाषा व्यर्थ हो जाती है।

लाओत्से ने कहा है कि जो कहा जा सकता है वह सच नहीं हो सकता और जो सच है वह कहा नह जा सकता। वह मौन रह गया। जिंदगी के अंतिम दिनों तक उसने कुछ भी लिखने से इनकार किया। उसने कहा कि अगर मैं कुछ कहूं तो वह असत्य हो जाएगा। क्योंकि उस जगत के संबंध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता जहां एक ही बचता है।

''आंखे बंद करके अपने अंतरस्थ अस्तित्व को विस्तार से देखो।''

शरीर और मन दोनों को विस्तार से देखो।

''इस प्रकार अपने सच्चे स्वभाव को देख लो।''

तो इस विधि का प्रयोग कैसे करे? आंखों को समग्र रूप से बंद होना जरूरी है। अगर तुम इसका प्रयोग करते हो तो पहले आंखें बंद करो और फिर आंखों की सारी गति रोक दो। अपनी आंखों को पत्थर की तरह हो जाने दो, गति बिलकुल बंद करो और फिर आंखों की सारी गति रोक दो। इसका अभ्यास करते हुए किसी दिन अचानक, हठात तुम अपने अंदर देखने में समर्थ हो जाओगे। वे आंखें जो सतत बाहर देखने की आदी थी भीतर को मूड जाएंगी। और तुम्हें अपने अंतरस्थ की एक झलक मिल जायेगी। और तब कोई कठिनाई नहीं रहेगी।

एक बार तुम्हें अंतरस्थ की झलक मिल गई तो तुम जानते हो कि क्या किया जाए और कैसे गति की जाए। पहल झलक ही कठिन है। उसके बाद तुम्हें तरकीब हाथ लग जायेगी। जब वह एक खेल, एक युक्ति की बात हो जाएगी। किसी भी क्षण तुम अपनी आंखे बंद कर सकते हो।

बुद्ध मर रहे थे। यह उनके जीवन का अंतिम दिन था। और उन्होंने अपने शिष्यों से कहा कि कुछ पूछना हो तो पूछो। शिष्य रो रहे थे। आंसू बह रहे थे। उन्होंने बुद्ध से कहा कि आपने हमें इतना समझाया, अब पूछने को क्या बाकी है। बुद्ध की आदत थी कि वे एक बात को तीन बार पूछते थे। वे एक बार ही पूछकर चुप नहीं रह जाते थे। उन्होंने एक बार फिर पूछा। और फिर तीसरी बार भी पूछा। कि कोई प्रश्न तो नहीं है तुम्हारा।

कहा जाता है कि बुद्ध की इस आंतरिक यात्रा के चार चरण थे। पहले उन्होंने आंखें बंद की और तब उन्होंने आंखों को स्थिर कर लिया। उनमें कोई गति नहीं थी। उस समय यदि तुम रैम-रिकार्डिग कर प्रयोग करते, तो उसमे कोई ग्राफ नहीं बनता। आंखें स्थिर हो गई, यह दूसरी बात है। और तीसरी बात कि उन्होंने अपने शरीर का देखा और अंत में अपने केंद्र पर, मुल स्त्रोत पर पहुंच गए।

यह वजह है कि उनकी मृत्यु नह कहलाती। हम उसे निर्वाण कहते है। मृत्यु नहीं। यह फर्क है। सामान्यत: हम मरते है, क्योंकि हमारी मृत्यु घटित होती है। बुद्ध के साथ यह मृत्यु घटित नहीं हुई। मृत्यु के आने के पहले वे अपने स्त्रोत को वापस लौट गए थे। उनके मृत शरीर की ही मृत्यु हुई। वे वहां मौजूद नहीं थे।

बौद्ध परंपरा में कहा जाता है कि बुद्ध की कभी मृत्यु नहीं घटित हुई; मृत्यु उन्हें पकड़ ही नहीं पाई। मृत्यु ने उनका पीछा किया। जैसे कि वह सबका पीछा करती है। लेकिन वे उसके जाल में नहीं आए। मृत्यु उनके द्वारा छली गई। बुद्ध मृत्यु के पार खड़े होकर हंस रहे होंगे। क्योंकि मृत्यु मृत शरीर के पास खड़ी थी।

यह वही विधि है इसके चार चरण करो और आगे बढ़ो। और जब एक झलक मिल जाएगी तो पूरी चीज आसान और सरल हो जाएगी। तब तुम किसी भी क्षण अंदर जा सकते हो। और बाहर आ सकते हो—वैसे ही जैसे तुम अपने घर के बाहर-भीतर होते हो।

ओशो

विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—21

तंत्र-सूत्र—विधि—31 (ओशो)

देखने के संबंध में दूसरी विधि:

तंत्र सूत्र–विधि –31 ओशो
देखने के संबंध में दूसरी विधि
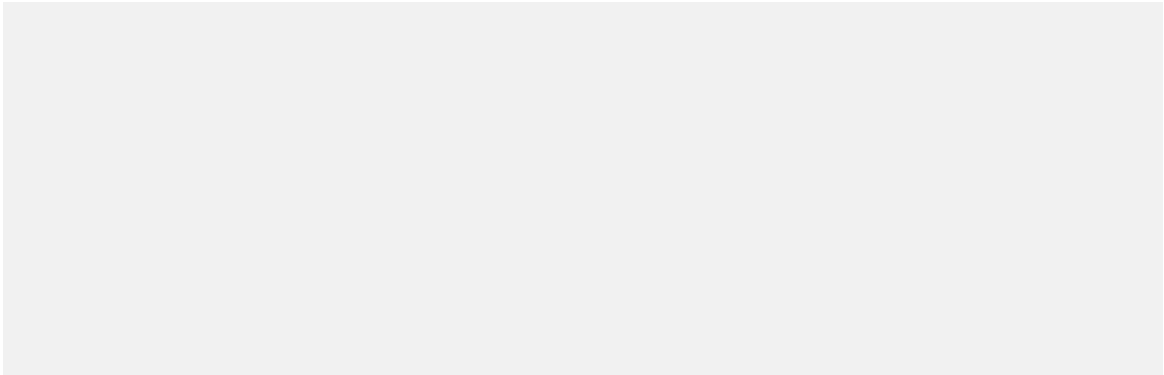
''किसी कटोरे को उसके पार्श्व-भाग या पदार्थ को देखे बिना देखो। थोड़े ही क्षणों में बोध का उपलब्ध हो जाओ।''

किसी भी चीज को देखो। एक कटोरा या कोई भी चीज काम देगी। लेकिन देखने की गुणवत्ता भिन्न हो।

''किसी कटोरे को उसके पार्श्व-भाग या पदार्थ को देखे बिना देखो।''
किसी विषय को पूरा का पूरा देखो, उसे टुकड़ो में मत बांटो। क्यो? इसलिए कि जब तुम किसी चीज को हिस्सों में बांटते हो तो आंखों को हिस्सों में देखने का मौका मिलता है। चीज को उसकी समग्रता में देखो। तुम यह कह सकते हो।
मैं तुम सभी को दो ढंग से देख सकता हूं। मैं एक तरफ से देखता हुआ आगे बढ़ सकता हूं। पहले अ को देखू, तब ब को तब स को, और इस तरह आगे बढ़ूं। लेकिन जब मैं अ, और ब या स को देखता हूं तो मैं उपस्थित नहीं रहता हूं। यदि उपस्थित भी रहूँ तो किनारे पर, परिधि पर उपस्थित रहता हूं। और उस हालत में मेरी दृष्टि एकाग्र और समग्र नहीं रहती है। क्योंकि जब मैं ब को देखता हूं तो अ से हट जाता हूं। और जब से को देखता हूं तो आ पूरी तरह खो जाता है। मेरी निगाह से बाहर चला जाता है। इस समूह को देखने का एक ढंग यह है। लेकिन मैं इस पूरे समूह को व्यक्तियों में, इकाइयों में बांटे बगैर भी पूरे का पूरा देख सकता हूं।

इसका प्रयोग करो। पले किसी चीज को अंश-अंश में देखो। एक अंश के बाद दूसरे अंश को। और तब अचानक उसे पूरे का पूरा देखो। उसे टुकड़ो-टुकड़ो में मत बांटो। जब तुम किसी चीज को पूरे का पूरा देखते हो, तो आंखों को गति करने की जरूरत नहीं रहती। आंखों को गति करने का मौका न मिले, इस उदेश्य से ही ये शर्तें रखी गई है।

पदार्थ कटोरे का भौतिक भाग है। और रूप उसका अभौतिक भाग है। और तुम पदार्थ से अपदार्थ की और गति करते हो। यह सहयोगी होगा; प्रयोग करो। किसी व्यक्ति के साथ भी प्रयोग कर सकते हो। कोई पुरूष या किसी स्त्री खड़ी है, उसे देखो। उस स्त्री या पुरूष को पूरे का पूरा समग्ररतः: अपनी दृष्टि में समेटो।

शुरू-शुरू में यह कुछ अजीब सा लगेगा। क्योंकि तुम इसके आदी नहीं हो। लेकिन अंत में यह बहुत सुंदर अनुभव होगा। और तब यह मत सोचो कि शरीर सुंदर है या असुंदर, गोरा है या काला, मर्द है या औरत। सोचो मत; रूप को देखो, सिर्फ रूप को, पदार्थ को भूल जाओ।

''थोड़े ही क्षणों में बोध को उपलब्ध हो जाओ।''

तुम एकाएक स्वयं के प्रति, अपने प्रति बोध कसे भर जाओगे। किसी चीज को देखते हुए तुम अपने को जान लोगे। क्यों? क्योंकि आंखों को बाहर गति करने की गुंजाइश नहीं है। रूप को समग्रता में लिया गया है। इसलिए तुम उसके अंशों में नहीं जा सकते। पदार्थ को छोड़ दिया गया है; शुद्ध रूप को लिया गया है। अब तुम उसके पदार्थ सोना, चाँदी, लकड़ी वगैरह के सबंध में नहीं सोच सकते । रूप शुद्ध है; उसके संबंध में सोचना संभव नहीं है। रूप बस रूप है; उसके संबंध में क्या सोचोगे।

स्वय के प्रति जागना जीवन का सर्वाधिक आनंदपूर्ण क्षण है। यही समाधि है। जब पहली बार तुम स्वयं के बोध से भरते हो तो उसके जो सौंदर्य, जो आनंद होता है, उसकी तुलना तुम किसी भी जानी हुई चीज से नहीं कर सकते हो। सच तो यह है कि पहली बार तुम स्वयं होते हो, आत्म वान होते हो। पहली बार तुम जानते हो कि मैं हूं। तुम्हारा होना बिजली की कौंध की तरह पहल बार प्रकट होता है। लेकिन यह क्यों होता है।

तुम ने देखा होगा, खासकर बच्चों की किताबों में या किसी मनोविज्ञान की किताब में—मुझे आशा है कि हरेक ने कहीं न कही देखा होगा—एक बूढ़ी स्त्री का चित्र। इस चित्र में, जिन रेखाओं से वह चित्र बना है, उसके भीतर ही एक सुंदर युवती का चित्र भी छिपा है। चित्र एक ही है। रेखाएं भी वही है। लेकिन आकृतियां दो है—एक बूढी स्त्री की और दूसरी युवती की।

उस चित्र की देखो तो एक साथ दोनों चित्रों को नहीं देख पाओगे। एक बार में उनमें से एक का ही बोध तुम्हें हो सकता है। अगर बूढी स्त्री दिखाई देगी तो वह जवान स्त्री नहीं दिखाई देगी, वह छिपी रहेगी। तुम उसे ढूंढना भी चाहोगे तो कठिन होगा; प्रयास ही बाधा बन जाएगा। कारण कि तुम बूढी स्त्री के प्रति बोधपूर्ण हो गए हो, तुम उसे न ढूंढ सकोगे। तो इसके लिए तुम्हें एक तरकीब करनी होगी।

बूढी स्त्री को एकटक देखो; युवती को बिलकुल भूल जाओ। बूढी स्त्री विदा हो जाएगी और उसके पीछे छिपी युवती को तुम देख लोगे। क्यों? अगर तुमने उसको ढूंढने की कोशिश की तो तुम चूक जाओगे।

तुम्हारी आंखें किसी एक बिंदू पर रुकी नहीं रह सकती है। अगर तुम बूढ़ी स्त्री के चित्र पर टकटकी लगाओगे, तो तुम्हारी आंखें थक जायेगी। तब वे अकस्मात उस चित्र से हटने लगेंगी। और इस हटने के क्रम में ही तुम दूसरे चित्र को देख लोगे। जो उस बूढी स्त्री के चित्र के बाजू में छिपा था। उन्हीं रेखाओं में छिपा था।

लेकिन चमत्कार यह है कि अब तुम्हें युवा स्त्री का बोध होगा तो बूढ़ी स्त्री तुम्हारी आंखों से ओझल हो जाएगी। पर अब तुम्हें पता है कि दोनों वहां है। शुरू में तो चाहे तुम को विश्वास नहीं होता कि वहां एक युवती छिपी है। लेकिन अब तो तुम जानते हो कि बूढी स्त्री छिपी है। क्योंकि तुम उसे पहले देख चुके हो। अब तुम जानते हो कि बूढ़ी स्त्री वहां है। लेकिन जब तक युवती को देखते रहोगे, तुम साथ-साथ बूढ़ी स्त्री को नहीं देख सकोगे। और जब बूढ़ी स्त्री को देखोगें तो युवती गायब हो जाएगी। दोनों चित्र युगपत नहीं देखे जा सकते। एक बार में एक ही देखा जा सकता है।

बाहर और भीतर को देखने के संबंध में भी यही बात घटित होती है, तुम दोनों को एक साथ नहीं देख सकते। जब तुम कटोरे या किसी चीज को देखते हो तो तुम बाहर देखते हो। चेतना बाहर गति करती है। नदी बाहर बह रही है। तुम्हारा ध्यान कटोरे पर है; उसे एकटक देखते रहो। यह टकटकी ही भीतर जाने की सुविधा बना देगी। तुम्हारी आंखें थक जाएंगी। वे गति करना चाहेंगी। बाहर जाने का कोई उपाय न देखकर नदी अचानक पीछे मुड़ जाएगी। वही एकमात्र संभावना बची है। तुम ने अपनी चेतना को पीछे लौटने के लिए मजबूर कर दिया। और जब तुम अपने प्रति जागरूक होगे तो कटोरा विदा हो जाएगा। कटोरा वहां नहीं होगा।

यही वजह है कि शंकर या नागार्जुन कहते है कि सारा जगत माया है। उन्होंने ऐसा ही जाना। जब हम अपने को जानते है तो जगत नहीं रहता। हकीकत में जगत माया नहीं है; वह है। लेकिन समस्या यह है कि तुम दोनों जागतों को एक साथ नहीं सकते हो। जब शंकर अपने में प्रवेश करते है, अपनी आत्मा को जान लेते है, जब वे साक्षी हो जाते है। तो संसार नहीं रहता है। वे भी सही है। वे कहते है वह माया है; यह भासता है, है नहीं।

तो तथ्य के प्रति जागों। जब तुम संसार को जानते हो तो तुम नहीं हो। तुम हो, लेकिन प्रच्छन्न हो; और तुम विश्वास नहीं कर सकते कि मैं प्रच्छन्न हूं। तुम्हारे लिए संसार अतिशय मौजूद है। और अगर तुम अपने को सीधे देखने की कोशिश करोगे तो यह कठिन होगा। प्रयत्न ही बाधा बन जा सकता है।

इस लिए तंत्र कहता है कि अपनी दृष्टि को कहीं भी संसार में, किसी भी विषय पर स्थित करो। और वहां से मत हटो। वहां टिके रहो। टिके रहने का यह प्रयत्न ही सह संभावना पैदा कर देगा कि चेतना प्रतिक्रमण करने लगे। पीछे लौटने लगे। पीछे लौटने लगे। तब तुम स्वयं के प्रति बोध से भरोंगे।

लेकिन जब तुम स्वयं के प्रति जागोगे तो कटोरा नहीं रहेगा। कटोरा तो है लेकिन वह तुम्हारे लिए नहीं रहेगा। इस लिए शंकर कहते है कि संसार माया है। जब तुम स्वयं को जान लेते हो तो जगत नहीं रहता है। स्वप्नवत विलीन हो जाता है।

लेकिन चार्वाक, ऐपिकुरस और मार्क्स, वे भी सही है। वे कहते है कि जगत सत्य है। और आत्मा मिथ्या है। वह कहीं मिलती नहीं है। वे कहते है विज्ञान सही है। विज्ञान कहता है कि केवल पदार्थ है, केवल विषय है; विषयी नहीं है। वे भी सही है। क्योंकि उनकी आंखे अभी विषय पर टिकी है। वैज्ञानिक का ध्यान निरंतर विषयों से बंधा होता है। वह आत्मा को बिलकुल भूल बैठता है।

शंकर और मार्क्स दोनों एक अर्थ में सही है। और एक अर्थ में गलत है। अगर तुम संसार से बंधे हो, अगर तुम्हारी दृष्टि संसार पर टीकी है। तो आत्मा माया मालूम होगी। स्वप्न वत लगेगी। और अगर तुम भीतर देख रहे हो तो संसार स्वप्नवत हो जाएगा। संसार और आत्मा दोनों सत्य है। लेकिन दोनों के प्रति युगपत सजग नहीं हुआ जा सकता। यही समस्या है, और इसमे कुछ भी नहीं किया जा सकता। या तो तुम बूढी स्त्री से मिलोंगे या युवती से। उनमें से एक सदा माया रहेगी।

यह विधि सरलता से उपयोग की जा सकती है। और यह थोड़ा समय लेगी। लेकिन यह कठिन नहीं है। एक बार तुम चेतना की प्रतिगति को, पीछे लौटने की प्रक्रिया को ठीक से समझ लो, तो इस विधि का प्रयोग कहीं भी कर सकते हो। किसी बस या रेलगाड़ी से यात्रा करते हुए भी यह संभव है। कही भी संभव है। और कटोरा या किसी खास विषय की जरूरत नहीं है। किसी भी चीज से काम चलेगा। किसी भी चीज को एकटक देखते रहो। देखते ही रहो। और अचानक तुम भीतर मुड़ जाओगे और रेलगाड़ी या बस खो जाएगी।

निश्चित ही तब तुम अपनी आंतरिक यात्रा से लौटोगे तो तुम्हारी बाहरी यात्रा भी काफी हो चुकेगी। लेकिन रेलगाड़ी खो जायेगी। तुम एक स्टेशन से दूसरे स्टेशन पहुंच जाओगे। और उनके बीच रेलगाड़ी नहीं, अंतराल रहेगा। रेलगाड़ी तो थी; अन्यथा तुम दूसरे स्टेशन पर कैसे पहुंचते। लेकिन वह तुम्हारे लिए नहीं थी।

जो लोग इस विधि का प्रयोग कर सकते है वह इस संसार में सरला से रहा सकते है। याद रहे, वे किसी भी क्षण किसी भी चीज को गायब करा सकते है। तुम अपनी पत्नी या अपने पति से तंग आ गए हो, तुम उसे विलीन करा सकते हो। तुम्हारी पत्नी तुम्हारे बाजू में ही बैठी है, और वह नहीं है। यह माया हो गई है। प्रच्छन्न हो गई है। सिर्फ टकटकी बांधकर और अपनी चेतना को भीतर ले जाकर उसे तुम अपने लिए अनुपस्थित कर सकते हो। और ऐसा कई बार हुआ है।

मुझ सुकरात की याद आती है, उसकी पत्नी जेनथिप्पे उसके लिए बहुत चिंतित रहा करती थी। और कोई भी पत्नी उसकी जगह वैसे ही परेशान रहती। सुकरात को पति के रूप में बर्दाश्त कना महा कठिन काम है। सुकरात शिक्षक के रूप में ठीक है; लेकिन पति के रूप में नहीं।

एक दिन की बात है, और इस घटना के चलते सुकरात की पत्नी दो हजार वर्षों से निरंतर निंदित रही है। लेकिन मेरे विचार में यह निंदा उचित नहीं है। उसने कोई भूल नहीं की थी। सुकरात बैठा था और उसने इस विधि जैसा ही कुछ किया होगा। इसका उल्लेख नहीं है; यह मरा अनुमान है। उसकी पत्नी उसके लिए ट्रे में चाय लेकिर आई। उसने देखा सुकरात वहां नहीं है। और इसलिए, कहा जाता है कि, उसने सुकरात के चेहरे पर चाय उड़ेल दी। और अचानक वह वापस आ गया। आजीवन उसके चेहरे पर जलने के दाग पड़े रहे।

इस घटना के कारण सुकरात की पत्नी बहुत निंदित हुई। लेकिन कोई नहीं जानता है कि सुकरात उस क्या कर रहा था। क्योंकि कोई पत्नी अचानक ऐसा नहीं कर सकती। उसकी कोई जरूरत नहीं है। उसने अवश्य कुछ किया होगा। कोई ऐसी बात अवश्य हुई होगी। जिस वजह से जेनथिप्पे को उस पर चाय उड़ेल देनी पड़ी। वह जरूर किसी आंतरिक समाधि में चला गया होगा। और गरम चाय की जलन के कारण समाधि से वापस लोटा होगा। इस जली के कारण ही उसकी चेतना लौटी होगी। ऐसा हुआ होगा, यह मेरा अनुमान है। क्योंकि सुकरात के संबंध में ऐसी ही अनेक घटनाओं का उल्लेख मिलता है।

एक बार ऐसा हुआ कि सुकरात अड़तालीस घंटे तक लापता रहा। सब जगह उसकी खोजबीन की गई। सारा एथेंस सुकरात को तलाशता रहा। लेकिन वह कहीं नहीं मिला। और जब मिला तो वह नगर से बहुत दूर किसी वृक्ष के नीचे खड़ा था। उसका आधा शरीर बर्फ से ढक गया था। बर्फ गिर रही थी और वह बर्फ हो गया था। वह खड़ा था और उसकी आंखें खुली थी। लेकिन वे आंखें किसी भी चीज को देख नहीं रही थी।

जब लोग उसके चारों और जमा हो गए और उन्होंने उसकी आंखों में झाँका तो उन्हें लगा कि वह मर गया है। उसकी आंखें पत्थर जैसी हो गई थी। वे देख रही थी पर किसी खास चीज को नहीं देख रही थी। वे स्थिर थी, अचल थी। फिर लोगों ने उसकी छाती पर हाथ रखा और तब उन्हें भरोसा हुआ कि वह जीवित है। उसकी छाती हौले-हौले धड़क रही थी। तब उन्होंने उसे हिलाया-डुलाया और उसकी चेतना वापस लौटी।

होश में आने पर उससे पूछताछ की गई। पता चला कि अड़तालीस घंटों से वह यहां था और उसे इन घंटों का पता ही नी चला। मानो ये घंटे उसके लिए घटित नहीं हुए। इतनी देर वह देश काल से इस जगत में नहीं था। तो लोगों ने पूछा कि तुम इतनी देर से क्या कर रहे थे। हम तो समझे कि तुम मर गए। अड़तालीस घंटे।

सुकरात ने कहा: ''मैं तारों को एकटक देख रहा था और तब अचानक ऐसा हुआ कि तारे खो गए। और तब, मैं नहीं कह सकता, सारा संसार ही विलीन हो गया। लेकिन शीतल, शांत और आनंदपूर्ण अवस्था में रहा कि अगर उसे मृत्यु कहा जाए तो वह मृत्यु हजारों जिंदगी के बराबर है। अगर यह मृत्यु है तो मैं बार-बार मृत्यु में जाना पसंद करूंगा।

संभव है, यह बात उसकी जानकारी के बिना घटित हुई हो; क्योंकि सुकरात ने योगी था न तांत्रिक। सचेतन रूप से वह किसी आध्यात्मिक साधना से संबंधित नहीं था। लेकिन वह बड़ा चिंतक था। और हो सकता है यह बात आकस्मिक घटित हुई हो कि रात में वि तारों को देख रहा हो और अचानक उसकी निगाह अंतर्मुखी हो गई हो।

तुम भी यह प्रयोग कर सकते हो। तारे अद्भुत है और सुंदर है। जमीन पर लेट जाओ, अंधेरे आसमान को देखो और तब अपनी दृष्टि को किसी एक तारे पर स्थिर करो। उस पर अपने को एकाग्र करो। उस पर टकटकी बाँध दो। अपनी चेतना को समेटकर एक ही तारे को साथ जोड़ दो; शेष तारों को भूल जाओ। धीरे-धीरे अपनी दृष्टि को समेटो, एकाग्र करो।

दूसरे सितारे दूर हो जाएंगे। और धीरे-धीरे विलीन हो जायेगे। और सिर्फ एक तारा बच रहेगा। उसे एकटक देखते जाओ। देखते जाओ। एक क्षण आएगा जब वह तारा भी विलीन हो जाएगा। और जब वह तारा विलीन होगा तब तुम्हारा स्वरूप तुम्हारे सामने प्रकट हो जाएगा।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—21

तंत्र-सूत्र—विधि—32 (ओशो)

देखने के संबंध में तीसरी विधि:

''किसी सुंदर व्यक्ति या सामान्य विषय को ऐसे देखो जैसे उसे पहली बार देख रहे हो।''

''किसी सुंदर व्यक्ति या सामान्य विषय को ऐसे देखो जैसे उसे पहली बार देख रहे हो।''

पहले कुछ बुनियादी बातें समझ लो, तब इस विधि का प्रयोग कर सकते हो। हम सदा चीजों को पुरानी आंखों से देखते है। तुम अपने घर आते हो तो तुम उसे देखे बिना ही देखते हो। तुम उसे जानते हो, उसे देखने की जरूरत नहीं है। वर्षों से तुम इस घर में सतत आते रहे हो। तुम सीधे दरवाजे के पास आते हो, उसे खोलते हो और अंदर दाखिल हो जाते हो। उसे देखने की क्या जरूरत है?

यह पूरी प्रक्रिया यंत्र-मानव जैसी, रोबोट जैसी है। पूरी प्रक्रिया यांत्रिक है, अचेतन है। यदि कोई चूक हो जाए ताले में कुंजी न लेग, तो तुम ताले पर दृष्टि डालते हो। कुंजी जब जाए तो ताले को क्या देखना।

यांत्रिक आदत के कारण, एक ही चीज को बार-बार दुहराने के कारण तुम्हारी देखने की क्षमता नष्ट हो जाती है। तुम्हारी दृष्टि का ताजापन जाता रहता है। सच तो यह है कि तुम्हारी आँख का काम ही खत्म हो जाता है। इस बात को ख्याल में रख लो तो अच्छा। तुम बुनियादी रूप से अंधे हो जाते हो। आँख की जरूरत न रही।

स्मरण करो कि तुमने अपनी पत्नी को पिछली दफा कब देखा। संभव है, तुम्हें अपनी पत्नी या पति को देखे वर्षों हो गए हो। हालांकि दोनों साथ ही रहते हो। कितने वर्ष हो गये एक दूसरे को देखे। तुम एक दूसरे पर भागती नजर डालकर निकल जाते हो। लेकिन कभी उसे देखते नहीं। पूरी निगाह नहीं डालते। तो जाओ और अपनी पत्नी या पति को ऐसे देखो जैसे कि पहली बार देख रहे हो। क्यों?

क्योंकि जब तुम पहली बार देखते हो तो तुम्हारी आंखों में ताजगी होती है। तुम्हारी आंखें जीवंत होती है। समझो कि तुम रास्ते से गुजर रहे हो। एक सुंदर स्त्री सामने से आती है। उसे देखते ही तुम्हारी आंखें सजीव हो उठती है। दीप्त बन जाती है। उनमें अचानक एक ज्योति जलने लगती है। हो सकता है, यह स्त्री किसी की पत्नी हो। उसका पति उसे नहीं देखना चाहेगा। वह इस स्त्री के प्रति वैसे ही अंधा है जैसे तुम अपनी पत्नी के प्रति अंधे हो। क्यो? क्योंकि पहली बार ही आंखों की जरूरत पड़ती है। दूसरी बार उतनी नहीं और तीसरी बार बिलकुल नहीं। कुछ पुनरूक्तियां के बाद हम अंधे ही जीते है।

जरा होश से देखो। जब तुम अपने बच्चें से मिलते हो, क्या तुम उन्हें देखते भी हो? नहीं, तुम उन्हें नहीं देखते। नहीं देखने की आदत आंखों को मुर्दा बना देती है। आंखें ऊब जाती है। थक जाती है। उन्हें लगता है कि पुरानी चीज को ही बार-बार क्या देखना।

सच्चाई यह है कि कोई भी पुरानी नहीं है, तुम्हारी आदत के कारण ऐसा दिखाई पड़ता है। तुम्हारी पत्नी वही नहीं है। जो कल थी; हो नहीं सकती अन्यथा वह चमत्कार है। दूसरे क्षण कोई भी चीज वही नहीं रहती जो थी। जीवन एक प्रवाह है। सब कुछ बहा जा रहा है। कुछ भी तो वही नहीं है।

वही सूर्य कल नहीं होगा। जो आज ऊगा है। ठीक-ठीक अर्थों में सूरज कल वही नहीं रहेगा। हर रोज वह नया है। हर रोज उसमें बुनियादी बदलाहट हो रही है। आकाश भी कल वही नहीं था। आज की सुबह कल नहीं आयेगी। और प्रत्येक सुबह की अपनी निजता है, अपना व्यक्तितत्व है। आसमान और उसके रंग फिर उसी रूप में प्रकट नहीं होंगे।

लेकिन तुम ऐसे जीते हो जैसे कि सब कुछ वही का वही है। कहते है कि आसमान के नीचे कुछ भी नया नहीं है। लेकिन सचाई यह नहीं है। लेकिन सच्चाई यह है कि आसमान के नीचे कुछ भी पुराना नहीं है। सिर्फ तुम्हारी आंखें पुरानी हो गई है। चीजों की आदती हो गई है। तब कुछ नहीं है।

बच्चों के लिए सब कुछ नया है। इसलिए उन्हें सब कुछ उत्तेजित करता है। सुबह का सूरज, समुद्र-तट पर एक रंगीन पत्थर। किसी लकड़ी को टुकड़े को देख कर भी वह मचल उठता है। और तुम स्वंय भगवान को भी अपने घर आते देख कर भी उत्तेजित नहीं होते। तुम कहोगे, कि मैं उन्हें जानता हूं, मैंने उनके बारे में पढ़ा है। बच्चे उत्तेजित होते है। क्योंकि उनकी आंखें नई और ताजा है। और हरेक चीज एक नई दुनिया है, नया आयाम है। बच्चों की आंखों को देखो। उनकी ताजगी उनकी प्रभा पूर्ण सजीवता, उनकी जीवंतता को देखो। वे दर्पण जैसी है—शांत, किंतु गहरे जाने वाली और ऐसी आंखें ही भीतर पहुंच सकती है।

यह विधि कहती है: ''किसी सुंदर व्यक्ति या सामान्य विषय को ऐसे देखो जैसे उसे पहली बार देख रहे हो।''

कोई भी चीज काम देगी। अपने जूतों को ही देखो। तुम वर्षों से उनका इस्तेमाल कर रहे हो। आज उन्हें ऐसे देखो जैसे कि पहली बार देख रहे हो और फर्क को समझो। तुम्हारी चेतना की गुणवत्ता अचानक बदल जाती है।

पता नहीं, तुम ने वान गाग का अपने जूते का बना हुआ चित्र देखा है या नहीं। यह एक अति दुर्लभ चित्र है। एक पुराना जुता है—थका हुआ, उदास, मानो मृत्यु के मुंह में हो। यह एक महज फटा-पुराना जूता है। लेकिन उसे देखो, उसे महसूस करो। यह इतना दुःखी है, बिलकुल थका-मांदा है, जर्जरित है, कि बूढे आदमी की तरह यह बूढा जूता प्रार्थना कर रहा है कि है परमात्मा, मुझे दुनियां से उठा लो। सर्वाधिक मौलिक चित्रों में एक चित्र की गिनती है।

वान गाग के चित्र को गोर से देखो, और तब तुम्हें पता चलेगा कि उसे जूते में क्या–क्या दिखाई पडा था। उसमें सब कुछ है—उसके पहनने वाले का संपूर्ण जीवन-चरित्र। लेकिन उसने यह कैसे देख होगा?

चित्रकार होने के लिए बच्चे की दृष्टि की ताजगी फिर से प्राप्त करनी होती है। तभी वह किसी चित्र को देख सकता है। छोटी से छोटी चीज को भी देख सकता है। और केवल वही देख सकता है।

सिझान ने एक कुर्सी का चित्र बनाया है—महज मामूली कुर्सी का। और तुम हैरान होगे कि एक कुर्सी का क्या चित्र बनाना। उसकी जरूरत क्या है। लेकिन उसने उस चित्र पर महीनों काम किया। तुम उस कुर्सी को देखने के लिए एक क्षण भी नहीं देते

और सिझान ने उस पर महीनों काम किया। कारण कि वह कुर्सी को देख सकता था। कुर्सी के अपने प्राण है। उसकी अपनी कहानी है। उसके अपने सुख दुःख है। वह जिंदगी से गुजरी है। उसने जिंदगी देखी है। उसके अपने अनुभव है। अपनी स्मृतियां है। सिझान के चित्र में ये सब अभिव्यक्त हुआ है।

लेकिन क्या तुम अपनी कुर्सी को कभी देखते हो। नहीं, कोई नहीं देखता है और न किसी को ऐसा भाव ही उठता है।

कोई भी चीज चलेगी। वह विधि तुम्हारी आंखों को ताजा और जीवंत बना देगी। इतना ताजा और जीवंत कि वे भीतर मुड़ सकें और तुम अपने अंतरस्थ को देख लो। लेकिन ऐसे देखो, मानों पहली बार देख रहे हो। इस बात को ख्याल में रख लो कि किसी चीज को ऐसे देखना है जैसे कि पहली बार देख रहे हो। और तब अचानक किसी समय तुम चकित रह जाओगे। कि कैसा सौंदर्य भरा हुआ है संसार में।

अचानक होश से भर जाओ और अपनी पत्नी को देखो—ऐसे कि पहली बार देख रहे हो। और आश्चर्य नहीं कि तुम्हें उसके प्रति फिर उसी प्रेम की प्रतीति हो जिसका उद्रेक प्रथम मिलन में हुआ था। ऊर्जा की वह लहर, आकर्षण की वह पूर्णता तुम्हें अभिभूत कर देती है। लेकिन ''किसी सुंदर व्यक्ति या सामान्य विषय को ऐसे देखो जैसे कि पहली बार देख रहे हो।''

उससे क्या होगा। तुम्हारी दृष्टि तुम्हें वापस मिल जायेगी। तुम अंधे हो। अभी जैसे हो तुम अंधे हो। और वह अंधापन शारीरिक अंधेपन से ज्यादा घातक है; क्योंकि आँख के रहते हुए भी तुम नहीं देख सकते।

प्रत्येक क्षण अपने को अतीत से तोड़ते चलो। अतीत को अपने भीतर प्रवेश मत करने दो। अतीत को अपने साथ मत ढ़ोओ। अतीत को अतीत से ही छोड़ दो। और प्रत्येक चीज को ऐसे देखो जैसे कि पहली बार देख रहे हो। तुम्हें तुम्हारे अतीत से मुक्त करने की यह एक बहुत कारगर विधि है।

इस विधि के प्रयोग से तुम सतत वर्तमान में जीने लगोगे। और धीरे-धीरे वर्तमान के साथ तुम्हारी घनिष्ठता बन जाएगी। तब हरेक चीज नई होगी। और तब तुम हेराक्लाइटस के इस कथन को ठीक से समझ सकोगे। कि तुम एक ही नदी में दोबारा नहीं उतर सकते।

तुम एक ही व्यक्ति को दुबारा नहीं देख सकते। क्यो? क्योंकि जगत में कुछ भी स्थायी नहीं है। हर चीज नदी की भांति है—प्रवाहमान और प्रवाहमान। यदि तुम अतीत सक मुक्त हो जाओ और तुम्हें वर्तमान को देखने की दृष्टि मिल जाए तो तुम अस्तित्व में प्रवेश कर जाओगे। और यह प्रवेश दोहरा होगा। तुम प्रत्येक चीज में, उसके अंतरतम में प्रवेश कर सकोगे; और तुम अपने भीतर भी प्रवेश कर सकोगे।

वर्तमान द्वारा है। और सभी ध्यान किसी न किसी रूप में तुम वर्तमान से जोड़ने की चेष्टा करते हो। ताकि तुम वर्तमान में जी सको।

तो वह विधि सर्वाधिक सुंदर विधियों में से एक है और सरल भी है। और तुम इसका प्रयोग बिना किसी हानि क कर सकते हो।

तुम किसी गली से दूसरी बार गुजर रहे हो। लेकिन अगर उसे ताजा आंखों से देखते हो तो वही गली नई गली हो जाएगी। तब मिलने पर एक मित्र भी अजनबी मालूम पड़ेगा। ऐसे देखने पर तुम्हारी पत्नी ऐसी लगेगी जैसी पहली बार मिलने पर लगी थी। एक अजनबी। लेकिन क्या तुम कह सकते हो। कि तुम्हारी पत्नी या तुम्हारा पति तुम्हारे लिए आज भी अजनबी नहीं है। हो सकता है। तुम उसके साथ बीस, तीस या चालीस वर्षों से रह रहे हो। लेकिन क्या तुम कह सकते हो कि तुम उससे परिचित हो।

वह अभी भी अजनबी है। तुम दो अजनबी एक साथ रह रहे हो। तुम एक दूसरे की बाह्य आदतों को, बाहरी प्रतिक्रिया ओर को जानते हो; लेकिन अस्तित्व का अंतरस्थ अभी भी अपरिचित है, अस्पर्शित है। फिर अपनी पत्नी या पति को ताजा निगाह से देखो। मानो पहली बार देख रहे हो। नये-नये।

यह प्रयोग तुम्हारी दृष्टि को ताजगी से भर देगा। तुम्हारी आंखें निर्दोष हो जाएगी। वे निर्दोष आंखें ही देख सकती है। वे निर्दोष ही अंतरस्थ जगत में प्रवेश कर सकती है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—21

तंत्र-सूत्र—विधि—33 (ओशो)

देखने के संबंध में चौथी विधि:

तंत्र-सूत्र—विधि—33 (ओशो)
देखने के संबंध में चौथी विधि:

''बादलों के पार नीलाकाश को देखने से शांति को सौम्यता को उपलब्ध होओ।''
मैंने इतनी बातें इसलिए बताई कि ये विधियां बहुत सरल है। और उन्हें प्रयोग करके भी तुम्हें कुछ नहीं मिलेगा। और तब तुम कहोगे, ये किस ढंग की विधियां है। तुम कहोगे कि इन विधियों को तो हम अपने आप ही कर सकते है। केवल आकाश को, बादलों के पर नीलाकाश को देखते-देखते कोई शांत हो जाए, आप्तकाम हो जाए।
बादलों के पार नीलाकाश को तुम देखते रह सकते हो, और कुछ भी घटित नहीं होगा। तब तुम कहोगे कि ये कैसी विधियां है। तुम कहोगे कि शिव के मन में जो भी आता है वे बोल देते है; उसमे कोई तर्क या बुद्धि नहीं है। यह कैसी विधि कि बादलों के पार नीलाकाश को देखते-देखते शांति को उपलब्ध हो जाओ।

लेकिन यदि तुम्हें मृत्यु, अर्थवत्ता और सिखावन के तीन सूत्र याद रहें तो यह विधि तुम्हें तुरंत भीतर की तरफ मुड़ने में सहायता देगी।

''बादलों के पार नीलाकाश को देखने मात्र से........।''

इस सूत्र से विचारना नहीं, देखना बुनियादी है। आकाश असीम है; उसका कहीं अंत नहीं है। उसे महज देखो। वहां कोई विषय वस्तु नहीं है। यही कारण है कि आकाश चुना गया है। आकाश कोई विषय नहीं है। भाषागत रूप से वह विषय है; लेकिन अस्तित्व में वि कोई विषय नहीं है। विषय वह है जिसका आरंभ और अंत हो। तुम किसी विषय के चारों और घूम सकते हो; लेकिन आकाश की परिक्रमा नहीं कर सकते। तुम आकाश में ही हो, लेकिन, लेकिन तुम आकाश के चारों और घूम नहीं सकते। तुम आकाश के विषय बन सकते हो। लेकिन आकाश तुम्हारा विषय नहीं बन सकता। आकाश में तो तुम झांक सकते हो; उसका कोई अंत नहीं है।

तो नीले आकाश को देखो। और देखते ही रहो। उसका अंत नहीं है; उसकी कोई सीमा नहीं है। और उसके संबंध में सोच-विचार मत करो। मत कहो कि यह कितना सुंदर है। मत को कि यह कितना मोहक है। उसके रंगों की प्रशंसा मत करो। उससे सोचना शुरू हो जाएगा। और सोचना शुरू करते ही देखना बंद हो जाता है; अब तुम्हारी आंखें अनंत आकाश में गति नहीं कर रहीं। इसलिए सिर्फ देखो। अनंत आकाश में गति करो। विचार मत करो। शब्द मत बनाओ। शब्द बाधा बन जाते है। इसलिए सिर्फ देखो। अनंत आकाश में गति करो। विचार मत करो। शब्द मत बनाओ। शब्द बाधा बन जाते है। इतना भी मत करो कि यह नीलाकाश है। इसे शब्द ही नहीं दो। इसे नीलाकाश का महज दर्शन रहने दो—निर्दोष दर्शन।

आकाश का कहीं अंत नहीं है। इसलिए तुम्हारे देखने का भी अंत नहीं आ सकता। तुम देखते जाओगे। देखते ही जाओगे। और क्योंकि वहां कोई विषय नहीं है। मात्र शून्य है, इसलिए अचानक तुम अपने प्रति जाग जाओगे। क्यो?

क्योंकि शून्य में इंद्रियाँ व्यर्थ हो जाती है। यदि कोई विषय हो तो इंद्रियाँ की सार्थकता है। अगर तुम किसी फूल को देख रहे हो तो वह किसी विषय को देखना हुआ। फूल है; लेकिन आकाश नहीं है।

हम किसे आकाश कहते है। उसे जो है नहीं। आकाश का अर्थ जगह या स्थान होता है। सभी चीजें आकाश में है। लेकिन आकाश स्वयं कोई चीज नहीं है। विषय नहीं है। आकाश शून्य है। रिक्तता है। खाली स्थान है। जिसमें विषय हो सकता है। आकाश स्वयं शुद्ध खालीपन है। इस शुद्ध खालीपन को देखो; इस शुद्ध रिक्तता को देखो।

इसलिए सूत्र कहता है कि बादलों के पार नीलाकाश को देखो। बादल आकाश नहीं है; वे आकाश में तैरते हुए विषय है। तुम बादलों को भी देख सकते हो; लेकिन उससे कुछ नहीं होगा। बादलों को नहीं, चाँद-तारों को भी नहीं , वरन विषय-शून्यता को देखना है, विराट रिक्तता को देखना है। उसे ही देखो। उससे होगा क्या?

शून्य में इंद्रियों के पकड़ने के लिए कोई विषय नहीं है। और जब पकड़ने को, चिपकने को कोई विषय न हो, तो इंद्रियाँ बेकार हो जाती है। और अगर तुम नीलाकाश को बिना सोचे-विचारे देखते ही चले जाओ तो अचानक किसी क्षण तुम्हें लगेगा कि सब कुछ विलीन हो गया है। सिर्फ शुन्य बचा है। और इस विलीनता में , इस शून्य में तुम्हें अपना बोध होगा। तुम अपने प्रति जाग जाओगे। रिक्तता को देखते-देखते तुम भी रिक्त हो जाओगे। क्यों? क्योंकि तुम्हारी आंखें दर्पण की भांति है। उनके सामने जो कुछ भी प्रकट होता है। दर्पण उसे प्रतिबिंबित कर देता है।

मैं तुम्हें देखता हूं; तुम दुःखी हो। और तब सहसा वह दुःख मुझे में प्रविष्ट हो जाता है। अगर कोई दुःखी आदमी तुम्हारे कमरे में प्रवेश करता है तो तुम भी दुःखी हो जाते हो। क्या हो जाता है? क्योंकि तुम्हारी आंखें दर्पण की भांति है। इस लिए वि दुःख तुममें प्रतिबिंबित हो जाता है। कोई व्यक्ति दिल खोलकर हंसता है और अचानक तुम भी हंसी से भर जाते हो।

लेकिन हुआ क्या? तुम दर्पण की तरह हो; तुम चीजों को प्रतिबिंबित करते हो। तुम कोई सुंदर चीज देखते हो; वह चीज तुममें प्रतिबिंबित हो जाती है। तुम कोई कुरूप चीज देखते हो; वह चीज भी तुममें प्रतिबिंबित हो जाती है। तुम जो कुछ भी देखते हो वह तुम्हारे भीतर गहरे रूप से प्रविष्ट हो जाता है; वह तुम्हारी चेतना का हिस्सा बन जाता है।

अगर तुम रिक्तता को, शून्य को देख रहे हो तो कुछ भी प्रतिबिंबित होने जैसा नहीं है। या है तो सिर्फ अनंत नीलाकाश है। और अगर यह असीम नीलाकाश तुममें प्रतिबिंबित हो जाए, अगर तुम अपने अंतस में उस आकाश को अनुभव कर सको। तो तुम शांत हो जाओगे। सौम्य हो जाओगे। आकाश शांत और सौम्य है। और अगर तुम शून्य को अनुभव कर सको—जहां नीलिमा। आकाश सब कुछ विलीन हो जाता है। तो तुम्हारे अंतस में भी वह शून्य प्रतिबिंबित होगा। और शून्य में मन कैसे सक्रिय रह सकता है? तनावग्रस्त कैसे हो सकते हो? शून्य में मन कैसे सक्रिय रह सकता है? शून्य में मन ठहर जाता है। और मन के विदा होते ही—मन जो तनाव और चिंता है, संगत-असंगत विचारों से भरा है—उसके विदा होते ही तुम शांति को उपलब्ध हो जाते हो।

एक बात और। शून्य जब अंतस में प्रतिबिंबित होता है, तो निर्वासना बन जाता है। अचाह बन जाता है। चाह ही तनाव है। चाह करते ही तुम चिंताग्रस्त हो जाते हो। तुम्हें एक सुंदर स्त्री दिखाई पड़ती है। और अचानक कामवासना पैदा हो जाती है। तुम्हें एक सुंदर मकान दिखाई पड़ता है और तुम उसे पाना चाहते हो। तुम्हारे पास से एक सुंदर कार निकलती है और तुम्हें इच्छा पकड़ती है कि मैं भी इस कार में बैठकर चलू। बस वासना पैदा हो गई। और वासना के साथ ही मन चिंतित हो उठता है। कि उसे कैसे पाया जाए, क्या किया जाए। मन आशावान हो उठता है या निराशा; लेकिन दोनों हालातों में वह सपने देख रहा है। कई बातें हो सकती है।

जब चाह पैदा होती है तो तुम उपद्रव में पड़ते हो। मन अनेक खंडों में टूट जाता है और अनेक योजनाएं, सपने और प्रक्षेपण शुरू हो जाते है। बस पागलपन शुरू हुआ। चाह पागलपन का बीज है।

लेकिन शून्य कोई विषय नहीं है। वह बस शून्य है। तुम शून्य को देखते हो तो कोई चाह नहीं पैदा होती। हो नहीं सकती है। तुम शून्य पर अधिकार करना नहीं चाहते; न तुम शून्य को प्रेम करना चाहते हो। शून्य में मन की सब गति रूक जाती है। कोई कामना नहीं उठती। और जहां चाह नहीं है वहीं शांति है। तुम सौम्य और शांत हो जाते हो। तुम्हारे भीतर सहसा शांति का विस्फोट होता है। तुम आकाश वत हो गए।

दूसरी बात कि तुम जिस चीज का भी मनन चिंतन करते हो, तुम उसके जैसे ही हो जाते हो। तुम वहीं हो जाते हो। क्योंकि मन अनंत रूप धारण कर सकता है। तुम जो भी चाहते हो, मन उसके ही रूप ले लेता है; तुम वही बन जाते हो। जो आदमी धन-दौलत के पीछे भागता है, उसका मन धन-दौलत ही बन जाता है। उसे हिलाओ तुम उसके भीतर रुपयों की झनझनाहट सुनोंगे। और कुछ नहीं सुनोंगे। तुम जो भी चाहते हो तुम वहीं हो जाते हो। इसलिए अपनी चाह के प्रति सावधान रहो; क्योंकि तुम वही हो जाते हो।

आकाश सर्वथा रिक्त है, खाली है। उससे ज्यादा रिक्त और क्या हो सकता है। और वह दूसरे तुम्हारे बिलकुल निकट है। उसके लिए कुछ खर्चा करना की भी जरूरत नहीं है। और उसे पाने के लिए तुम्हें हिमालय या तिब्बत या कहीं भी नहीं जाना है। विज्ञान ने, टेक्नोलॉजी ने सब कुछ नष्ट कर दिया है। लेकिन आकाश बचा हुआ है। तुम उसका उपयोग कर सकते हो। इसके पहले कि वे उसे नष्ट कर दें। तुम उसका उपयोग कर लो। किसी भी दिन वे उसे नष्ट कर देंगे।

उसे देखो, उसमे प्रवेश करो। उसमें गहरे डुबो। लेकिन याद रहे, यह देखना निर्विचार देखना हो। तब तुम अपने अंतस में उसी आकाश को अनुभव करोगे। उसी आयाम को अनुभव करोगे। तब वह विराट, वहीं नीलिमा, वही शून्य तुम्हारे भीतर होगा।

यही कारण है कि शिव कहते है: ''बादलों के पार नीलाकाश को देखने मात्र से शांति को, सौम्यता को उपलब्ध होओ।''

ओशो

विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—23

तंत्र-सूत्र—विधि—34 (ओशो)

देखने के संबंध में पांचवी विधि:

तंत्र-सूत्र—विधि—34 (ओशो)

''जब परम रहस्यमय उपदेश दिया जा रहा हो, उसे श्रवण करो। अविचल, अपलक आंखों से; अविलंब परम मुक्ति को उपलब्ध होओ।''

''जब परम रहस्यम उपदेश दिया जा रहा हो। उसे श्रवण करो।''

यह एक गुह्म विधि है। इस गुह्म तंत्र में गुरु तुम्हें अपना उपदेश या मंत्र गुप्त ढंग से देता है। जब शिष्य तैयार होता है तब गुरु उसे उसकी निजता में वक परम रहस्य या मंत्र संप्रेषित करता है। वह उसके कान में चुपचाप कह दिया जाएगा। फुसफुसा दिया जाएगा। यह विधि उस फुसफुसाहट से संबंध रखती है।

''जब परम रहस्यमय उपदेश दिया जा रहा हो, उसे श्रवण करो।''

जब गुरु निर्णय करे कि तुम तैयार हो और उसके अनुभव का गुह्म रहस्य तुम्हें बताया जा सकता है। जब वह समझो कि वह क्षण आ गया है कि तुम्हें वह कहा जा सकता है। जो अकथनीय है। तब इस विधि का उपयोग होता है।

''अविचल, अपलक आंखों से; अविलंब परम मुक्ति को उपलब्ध होओ।''

जब गुरु अपना गुह्म ज्ञान या मंत्र तुम्हारे कान में कहे तो तुम्हारी आंखों को बिलकुल स्थिर रहना चाहिए। उनमें किसी तरह की भी गति नहीं होनी चाहिए।

इसका मतलब है कि मन निर्विचार हो, शांत हो। पलक भी नहीं हीले; क्योंकि पलक का हिलना आंतरिक अशांति का लक्षण है। जरा सी गति भी न हो। केवल कान बन जाओ। भीतर कोई भी हलचल न रहे। और तुम्हारी चेतना निष्क्रिय, खुली ग्राहक की अवस्था में रहे—गर्भ धारण करने की अवस्था में। जब ऐसा होगा, जब वह क्षण आएगा जिसमें तुम समग्रता: रिक्त होते हो, निर्विचार होते हो, प्रतीक्षा में होते हो—किसी चीज की प्रतीक्षा में नहीं। क्योंकि वह विचार कहना होगा, बस प्रतीक्षा में—

जब यह अचल क्षण, ठहरा हुआ क्षण घटित होगा, जब सब कुछ ठहर जाता है, समय का प्रवाह बंद हो जाता है, और चित समग्ररतः: रिक्त है, तब अ-मन का जन्म होता है। और अ-मन में ही गुरु उपदेश प्रेषित करता है।

और गुरु कोई लंबा प्रवचन नहीं देगा। वह बस दो या तीन शब्द ही कहेगा। उस मौन में उसके वे एक या दो या तीन शब्द तुम्हारे अंतर्तम में उतर जाएंगे। केंद्र में प्रविष्ट हो जायेंगे। और वे वहां बीज बनकर रहेंगे।

इस निष्क्रिय जागरूकता में, इस मौन में ''अविलंब परम मुक्ति को उपलब्ध होओ।''

मन से मुक्त होकर ही कोई मुक्त हो सकता है। मन से मुक्ति ही एकमात्र मुक्ति है; और कोई मुक्ति नहीं है, मन ही बंधन है, दासता है, गुलामी है।

इसलिए शिष्य को गुरु के पास उस सम्यक क्षण की प्रतीक्षा में रहना होगा जब गुरु उसे बुलाएगा और उपदेश देगा। उसे पूछना भी नहीं है। क्योंकि पूछने का मतलब चाह है, वासना है। उसे अपेक्षा भी नहीं करना है; क्योंकि अपेक्षा का अर्थ शर्त है। वासना है, मन है। उसे सिर्फ अनंत प्रतीक्षा में रहना है। और जब वह तैयार होगा। जब उसकी प्रतीक्षा समग्र हो जाएगी तो गुरु कुछ करेगा। कभी-कभी तो गुरु छोटी सी चीज करेगा और बात घट जाएगी।

और सामान्यत: यदि शिव एक सौ बारह विधियां भी समझा दें तो कुछ नहीं होगा। कुछ भी नहीं होगा। क्योंकि तैयारी नहीं है। तुम पत्थर पर बीज बोओ तो क्या होगा। उसमें बीज का दोष भी नहीं है। ऋतु के बाहर बीज बोने से कुछ नहीं होता है। उसमे बीज का दोष नहीं है। सम्यक मौसम चाहिए, सम्यक घड़ी चाहिए, सम्यक भूमि चाहिए। तो ही बीज जीवित हो उठेगा, रूपांतरित होगा।

तो कभी-कभी छोटी सी चीज काम कर जाती है। उदाहरण के लिए, लिंची ज्ञान को प्राप्त हुआ जब वह अपने गुरु के दालान में बैठा था। गुरु आया और हंसा। गुरु ने लिंची की आंखों में देखा और ठहाका मारकर हंस पडा। लिंची भी हंसा। गुरु के चरणों में सिर रखा और वहां से विदा हो गया।

लेकिन वह छह वर्षों से मौन प्रतीक्षा में था। वह दालान छह वर्षों तक उसका घर बना था। गुरु रोज आता था और लिंची को आँख उठाकर भी नहीं देखता था। और वह वहीं रहता था। दो वर्षों के बाद उसने पहली बार उसे देखा। जब और दो वर्ष बीते तो उसने उसकी पीठ थपथपाई। और लिंची प्रतीक्षा करता रहा, प्रतीक्षा करता रहा। छह वर्ष पूरे होने पर गुरु आया और उसकी आँख में आँख डालकर जोर से हंसा।

अवश्य ही लिंची ने इस विधि का अभ्यास किया होगा।

''जब परम रहस्यमय उपदेश दिया जा रहा हो। उसे श्रवण करो। अविचल, अपलक आंखों से; अविलंब परम मुक्ति को उपलब्ध होओ।''

गुरु ने देखा और हंसी को अपना माध्यम बनाया। वह महान सदगुरू था। सच तो यह है कि शब्द जरूरी नहीं थे। मात्र हंसी से काम हो गया। अचानक वह हंसी फूटी और लिंची के भीतर कुछ घटित हो गया। उसने सिर झुकाया, वह भी हंसा और विदा हो गया। उसने लोगो को बताया कि मैं अब नहीं हूं, कि मैं मुक्त हो गया।

वह अब नहीं था, यही मुक्ति का अर्थ है। तुम मुक्त नहीं होते, तुम अपने से मुक्त होते हो। और लिंची ने बताया की यह कैसे हुआ।

वह छह वर्षों तक प्रतीक्षा में रहा। यह लंबी प्रतीक्षा थी, धैर्य पूर्ण प्रतीक्षा थी। वह दालान में बैठा रहता था। गुरु रोज ही आता था। और वह ठीक घड़ी की प्रतीक्षा करता कि जब लिंची तैयार हो तो वह कुछ करे। और छह वर्षों तक प्रतीक्षा करते-करते तुम ध्यान में उतर ही जाओगे। और क्या करोगे। लिंची ने कुछ दिनों तक पुरानी बातों को सोचा विचारा होगा। लेकिन वह कब तक चलेगा।

अगर तुम मन को रोज-रोज भोजन न दो तो धीरे-धीरे मन ठहर जाता है। एक ही चीज को तुम कितने दिनों तक बार-बार चबाते रहोगे। वह बीती बातों पर विचार करता रहा। फिर धीरे-धीरे नया ईंधन न मिलने के कारण उसका मन ठहर गया। उसे न पढ़ने की इजाजत थी, न गपशप करने की। उसे घूमने-फिरने और किसी से मिलने की भी मनाही थी। उसे अपनी शारीरिक जरूरतों को पूरा करके चुपचाप इंतजार करना था। दिन आए और गए; रातें आई और गई। गर्मी आई और गई; जाड़ा आया और गया; वर्षा आई और गई। धीरे-धीरे वह समय की गिनती भूल गया। उसे पता नहीं था कि वह कहां कितने दिनों से टिका था।

और तब एक दिन सहसा गुरु आया और उसने लिंची की आंखों में झाँका। लिंची की आंखें भी सहसा ठहर गई होगी। अचल हो गई होगी। यही क्षण था। छह वर्षों की तपस्या के फल का। छह वर्ष लगे इसमें। उसकी आंखों में जरा भ गति नहीं थी। गति होती तो वह चूक जाता। सब कुछ मौन हो चुका था। और तब अचानक अट्टहास। गुरु पागल की तरह हंसने लगा। और वह हंसी लिंची के अंतर्तम से सुनी गई होगी। वहां तक पहुंच गई होगी।

तो जब लिंची से लोगो ने पूछा कि तुम्हें क्या हुआ तो उसने कहा: ''जब मेरे गुरु हंसे सहसा मुझे प्रतीति हुई कि सारी संसार एक मजाक है। उनकी हंसी में से संदेश था: सारा संसार महज एक मजाक है, नाटक है। उस प्रतीति के साथ गंभीरता विदा हो गई। अगर संसार एक मजाक है तो फिर कौन बंधन में है। और किसे मुक्त चाहिए।'' लिंची ने कहा कि, अब बंधन नहीं रहा। मैं सोचता था कि मैं बंधन में हूं। और इसलिए मैं बंधन-मुक्त होने की चेष्टा करता था गुरु की हंसी के साथ बंधन गिर गया।''

कभी-कभी इतनी छोटी-छोटी बातों से घटना घट गई है कि उसकी तुम कल्पना भी नहीं कर सकते। ऐसी अनेक झेन कहानियां है। एक झेन गुरु मंदिर के घंटे की आवाज सुनकर संबोधि को प्राप्त हो गया। घंटे की आवाज सुनते-सुनते उसके भीतर कुछ चकनाचूर हो गया। एक झेन साध्वी पानी की बहँगी ढो रही थी। और ज्ञान को प्राप्त हो गई। एकाएक बांस टूट गया। और घड़े फूट गये। उसकी आवाज, घड़ों का फूटना पानी का बहना, और साध्वी आत्मोपलब्ध हो गई। क्या हुआ।

तुम बहुत से घड़े फोड़ दे सकते हो, और कुछ नहीं होगा। लेकिन साध्वी के लिए ठीक क्षण आ गया था। वह पानी भरकर लौट रही थी। उसके गुरु ने कहा था, आज रात मैं तुम्हें गुह्म मंत्र देने वाला हूं। इसलिए जाकर स्नान कर ले और मेरे लिए दो घड़े पानी ले आ। मैं भी स्नान कर लुंगा। और तब तुम्हें वह मंत्र बताऊंगा जिसके लिए तुम इंतजार कर रही थी।'' साध्वी जरूर आह्लादित हो उठी होगी कि सौभाग्य का क्षण आ गया। उसने स्नान किया, घड़े भरे और उन्हें लेकिन वापस चली।

पूर्णिमा की रात थी। और जब वह नदी से आश्रम को जा रही थी कि राह में ही बांस टूट गया। और जब वह पहुंची तो गुरु उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। गुरु ने उसे देखा और कहा कि अब जरूरत न रही; घटना घट गई। अब मुझे कुछ नहीं कहना। तुमने पा लिया।

वह बूढी साध्वी कहा करती थी कि बांस के टूटने के साथ ही मेरे भीतर कुछ टूट गया, मेरे भीतर भी कुछ मिट गया। ये दो घड़े क्या फूटे मेरा शरीर ही टूट गिरा। मैने आकाश में चाँद को देखा और पाया कि मेरे भीतर सब कुछ शांत हो गया। और तब से मैं नहीं हूं। मुक्त या मोक्ष का यही अर्थ है।

ओशो

विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

तंत्र-सूत्र—विधि—35 (ओशो)

देखने के संबंध में छट्टी ओशो

''किसी गहरे कुएं के किनारे खड़े होकर उसकी गहराइ..........

''किसी गहरे कुएं के किनारे खड़े होकर उसकी गहराइयों में निरंतर देखते रहो—जब तक विस्मय-विमुग्ध न हो जाओ।''
ये विधियां थोड़े से फर्क के साथ एक जैसी है।

''किसी गहरे कुएं के किनारे खड़े होकर उसकी गहराईयों में निरंतर देखते रहो—जब तक विस्मय-विमुग्ध न हो जाओ।''

किसी गहरे कुएं में देखो; कुआं तुममें प्रतिबिंबित हो जाएगा। सोचना बिलकुल भूल जाओ; सोचना बिलकुल बंद कर दो; सिर्फ गहराई में देखते रहो। अब वे कहते है कि कुएं की भांति मन की भी गहराई है। अब पश्चिम में वे गहराई का मनोविज्ञान विकसित कर रहे है। वे कहते है कि मन कोई सतह पर ही नहीं है। वह उसका आरंभ भर है। उसकी गहराइयां है, अनेक गहराइयां है, छिपी गहराइयां है।
किसी कुएं में निर्विचार होकर झांको; गहराई तुममें प्रतिबिंबित हो जाएगी। कुआं भीतर गहराई का बाह्य प्रतीक है। और निरंतर झाँकते जाओ—जब तक कि तुम विस्मय विमुग्ध न हो जाओ। जब तक ऐसा क्षण न आए झाँकते चले जाओ, झाँकते ही चले जाओ। दिनों हफ्तों, महीनों झाँकते रहो। किसी कुएं पर चले जाओ। उसमे गहरे देखो। लेकिन ध्यान रहे कि मन में सोच-विचार न चले। बस ध्यान करो, गहराई में ध्यान करो। गहराई के साथ एक हो जाओ। ध्यान जारी रखो। किसी दिन तुम्हारे विचार विसर्जित हो जाएंगे। यह किसी क्षण भी हो सकता है। अचानक तुम्हें प्रतीत होगा। कि तुम्हारे भीतर भी वही कुआं है। वही गहराई है। और तब एक अजीब बहुत अजीब भाव का उदय होगा, तुम विस्मय विमुग्ध अनुभव करोगे।

च्वांत्सु अपने गुरु लाओत्से के साथ एक पुल पर से गुजर रहा था। कहा जाता है कि लाओत्से ने च्वांत्सु से कहा कि यहां रुको और यहां से नीचे देखो—और तब तक देखते रहो जब तक कि नदी रूक न जाये। और पुल न बहने लगे।

अब नदी बहती है, पुल कभी नहीं बहता। लेकिन च्वांत्सु को यह ध्यान दिया गया कि इस पुल पर रहकर नदी को देखते रहो। कहते है कि उसने पुल पर झोपड़ी बना ली और वहीं रहने लगा।

महीनों गुजर गये और वह पूल पर बैठकर नीचे नदी में झाँकता रहा, और उस क्षण की प्रतीक्षा करने लगा जब नदी रूक जाए और पुल बहने लगे। ऐसा होने पर ही उसे गुरु के पास जाना था।

ओ एक दिन ऐसा ही हुआ। नदी ठहर गई और पुल बहने लगा।

यह कैसे संभव है? यदि विचार पूरी तरह ठहर जाये तो कुछ भी संभव है। क्योंकि हमारी बंधी बंधाई मान्यता कि कारण ही नदी बहती हुई मालूम पड़ती है। और पुल ठहरा हुआ। यह सापेक्ष है, महज सापेक्ष।

आइन्सटीन कहता है, भौतिकी कहती है कि सब कुछ सापेक्ष है। तुम एक तेज चलने वाली रेलगाड़ी में यात्रा कर रहे हो। क्या होता है, पेड़ भाग रहे है। भागे जा रहे है। और अगर रेलगाड़ी में हलन-चलन न हो, जिससे रेल चलने का एहसास होता है। तो तुम खिड़की से बाहर देखो तो गाड़ी नहीं, पेड़ भागते हुए नजर आयेंगे।

आइन्सटीन ने कहा है कि अगर दो रेलगाड़ियाँ या दो अंतरिक्ष यान अंतरिक्ष में अगल-बगल एक ही गति से चले तो तुम्हें पता भी नहीं चलेगा कि वे चल रहे है। तुम्हें चलती गड़ी का पता इसलिए चलता है। क्योंकि उसके बगल में ठहरी हुई चीजें है। यदि वे न हों, या समझो कि पेड़ भी उसी गति से चलने लगे, तो तुम्हें गति का पता नहीं चलेगा। तुम्हें लगेगा कि सब कुछ ठहरा हुआ है। या दो गाड़ियाँ अगल-बगल विपरीत दिशा में भार रही हो तो प्रत्येक की गति दुगुनी हो जाएगी। तुम्हें लगेगा की वह बहुत तेज भाग रही है।

वे तेज नहीं भाग रही है। गाड़ियाँ वही है, गति वहीं है। लेकिन विपरीत दिशाओं में गति करने के कारण तुम्हें दुगुनी गति का अनुभव होता है। और अगर गति सापेक्ष है तो यह मन का कोई ठहराव है जो सोचता है कि नदी बहती है और पुल ठहरा हुआ है।

निरंतर ध्यान करते-करते च्वांत्सु को बोध हुआ कि सब कुछ सापेक्ष है। नदी बह रही है; क्योंकि तुम पुल को थिर समझते हो। बहुत गहरे में पुल भी बह रहा है। इस जगत में कुछ भी थिर नहीं है। परमाणु घूम रहे है; इलेक्ट्रॉन घूम रहे है। पुल भी अपने भीतर निरंतर घूम रहा है। सब कुछ बह रहा है। पुल भी बह रहा है। च्वांत्सु को पुल की आणविक संरचना की झलक मिल गई होगी।

अब तो वे कहते है कि यह जो दीवार थिर दिखाई देती हे। वह सच में थिर नहीं है। उसमे भी गति है। प्रत्येक इलेक्ट्रॉन भाग रहा है। लेकिन गति इतनी तीव्र है कि दिखाई नहीं देती। इसी वजह से तुम्हें थिर मालूम पड़ती है।

यदि यह पंखा अत्यंत तेजी से चलने लगे तो तुम्हें उसके पंख या उनके बीच के स्थान नहीं दिखाई देंगे। और अगर वह प्रकाश की गति से चलने लगा तो तुम्हें लगेगा की वह कोई थिर गोला है। क्योंकि इतनी तेज गति को आंखें पकड़ नहीं पाती।

च्वांत्सु को पुल के अणु-अणु की झलक जरूर मिल गई होगी। उसने इतनी प्रतीक्षा की कि उसकी बंधी बंधाई मान्यता विलीन हो गई। तब उसने देखा कि पुल बह रहा है और पुल का बहाव इतना तीव्र है कि उसकी तुलना में नदी ठहरी हुई मालूम हुई। तब च्वांत्सु भागा हुआ लाओत्से के पास गया। लाओत्से ने कहा कि ठीक है, अब पूछने की भी जरूरत नहीं है। घटना घट गई।

क्या घटना घटी? अ-मन घटित हुआ है।

यह विधि कहती है: ''किसी गहरे कुएं के किनारे खड़े होकर उसकी गहराईयों में निरंतर देखते रहो—जब तक विस्मय विमुग्ध न हो जाओ।''

जब तुम विस्मय-विमुग्ध हो जाओगे। जब तुम्हारे ऊपर रहस्य का अवतरण होगा। जब मन नहीं बचेगा। केवल रहस्य और रहस्य का माहौल बचेगा। तब तुम स्वयं को जानने में समर्थ हो जाओगे।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—23

तंत्र-सूत्र—विधि—36 (ओशो)

देखने के संबंध में सातवीं ओशो
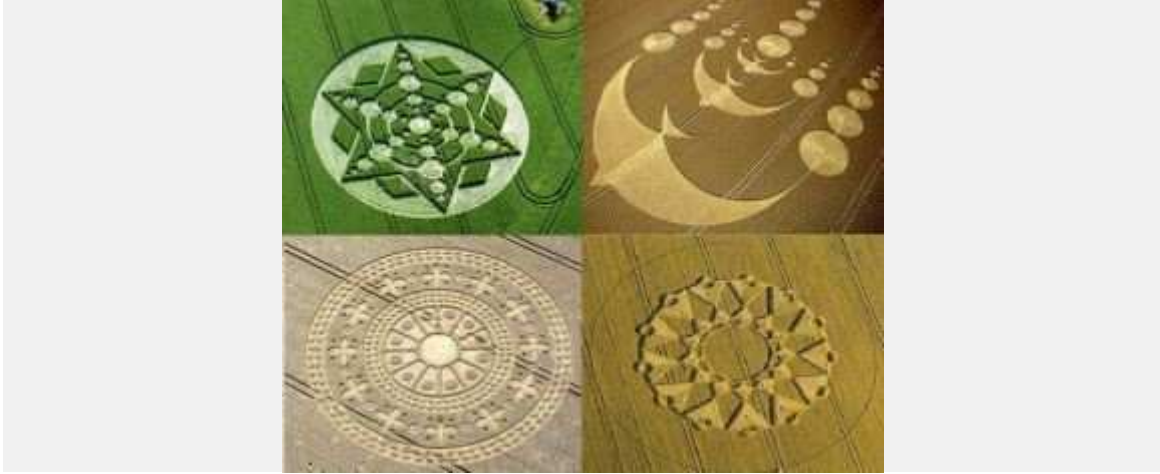
तंत्र-सूत्र—विधि—36 (ओशो)
देखने के संबंध में सातवीं ओशो

''किसी विषय को देखो, फिर धीरे-धीरे उससे अपनी दृष्टि हटा लो, और फिर धीरे-धीरे उससे अपने विचार हटा लो। तब।''

''किसी विषय को देखो..........।''
किसी फूल को देखो। लेकिन याद रहे कि इस देखने का अर्थ क्या है। केवल देखो, विचार मत करो। मुझे यह बार-बार कहने की जरूरत नहीं है। तुम सदा स्मरण रखो कि देखने का देखना भर है; विचार मत करो। अगर तुम सोचते हो तो वह देखना नहीं है; तब तुमने सब कुछ दूषित कर दिया। यह शुद्ध देखना है महज देखना।

''किसी विषय को देखा.......।''

किसी फूल को देखो। गुलाब को देखा।

''फिर धीरे-धीरे उससे अपनी दृष्टि हटा लो।''
पहले फूल को देखा, विचार हटाकर देखो। और जब तुम्हें लगे कि मन में कोई विचार नहीं बचा सिर्फ फूल बचा है। तब हल्के-हल्के अपनी आंखों को फूल से अलग करो। धीरे-धीर फूल तुम्हारी दृष्टि से ओझल हो जाएगा। पर उसका विंब तुम्हारे साथ रहेगा। विषय तुम्हारी दृष्टि से ओझल हो जाएगा। तुम दृष्टि हटा लोगे। अब बाहरी फूल तो नहीं रहा; लेकिन उसका प्रतिबिंब तुम्हारी चेतना के दर्पण में बना रहेगा।

''किसी विषय को देखा, फिर धीरे-धीरे उससे अपनी दृष्टि हटा लो, और फिर धीरे-धीरे उससे अपने विचार हटा लो। अब।''

तो पहल बाहरी विषय से अपने को अलग करो। तब भीतरी छवि बची रहेगी; वह गुलाब का विचार होगा। अब उस विचार को भी अलग करो। यह कठिन होगा। यह दूसरा हिस्सा कठिन है। लेकिन अगर पहले हिस्से को ठीक ढंग से प्रयोग में ला सको जिस ढंग से वह कहा गया है, तो यह दूसरा हिस्सा उतना कठिन नहीं होगा। पहले विषय से अपनी दृष्टि को हटाओं। और तब आंखें बद कर लो। और जैसे तुमने विषय से अपनी दृष्टि अलग की वैसे ही अब उसकी छवि से अपने विचार को, अपने को अलग कर लो। अपने को अलग करो; उदासीन हो जाओ। भीतर भी उसे मत देखो; भाव करो कि तुम उससे दूर हो। जल्दी ही छवि भी विलीन हो जाएगी।

पहले विषय विलीन होता है, फिर छवि विलीन होती है। और जब छवि विलीन होती है, शिव कहते है, ''तब, तब तुम एकाकी रह जाते हो। उस एकाकीपन में उस एकांत में व्यक्ति स्वयं को उपलब्ध होता है, वह अपने केंद्र पर आता है, वह अपने मूल स्त्रोत पर पहुंच जाता है।

यह एक बहुत बढ़िया ध्यान है। तुम इसे प्रयोग में ला सकते हो। किसी विषय को चुन लो। लेकिन ध्यान रहे कि रोज-रोज वही विषय रहे। ताकि भीतर एक ही प्रतिबिंब बने और एक ही प्रतिबिंब से तुम्हें अपने को अलग करना पड़े। इसी विधि के प्रयोग के लिए मंदिरों में मूर्तियां रखी गई थी। मूर्तियां बची है, विधि खो गई।

तुम किसी मंदिर में जाओ और इस विधि का प्रयोग करो। वहां महावीर या बुद्ध या राम या कृष्ण किसी की भी मूर्ति को देखो। मूर्ति को निहारो। मूर्ति पर अपने को एकाग्र करो। अपने संपूर्ण मन को मूर्ति पर इस भांति केंद्रित करो कि उसकी छवि तुम्हारे भीतर साफ-साफ अंकित हो जाए। फिर अपनी आंखों को मूर्ति से अलग करो और आंखों को बंद करो। उसके बाद छवि को भी अलग करो, मन से उसे बिलकुल पोंछ दो। तब वहां तुम अपने समग्र एकाकीपन में, अपनी समग्र शुद्धता में, अपनी समग्र निर्दोषता में प्रकट हो जाओगे।

उसे पा लेना ही मुक्त है। उसे पा लेना ही सत्य है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—23

तंत्र-सूत्र—विधि—37 (ओशो)

ध्वनि-संबंधी पहली विधि:

ध्वनि-संबंधी पहली विधि:

''हे देवी, बोध के मधु-भरे दृष्टि पथ में संस्कृत वर्णमाला के अक्षरों की कल्पना करो—पहले अक्षरों की भांति, फिर सूक्ष्मतर ध्वनि की भांति, और फिर सूक्ष्मतर भाव की भांति। और तब, उन्हें छोड़कर मुक्त होओ।''

शब्द ध्वनि है। विचार एक अनुक्रम में, तर्कयुक्त अनुक्रम में बंधे, एक खास ढांचे में बंधे शब्द है। ध्वनि मूलभूत है। ध्वनि से शब्द बनते है और शब्दों से विचार बनते है। और तब विचार से धर्म और दर्शनशास्त्र बनता है। सब कुछ बनता है। लेकिन गहराई में ध्वनि है।

यह विधि विपरीत प्रक्रिया का उपयोग करती है।

शिव कहते है: ''हे देवी, बोध के मधु-भरे दृष्टि पथ में संस्कृत वर्णमाला के अक्षरों की कल्पना करो—पहल अक्षरों की भांति, फिर सूक्ष्मतर ध्वनि की भांति, फिर सूक्ष्म तम भाव की भांति। और जब उन्हें छोड़कर मुक्त होओ।''

हम दर्शनशास्त्र में जीते है। कोई हिंदू है, कोई मुसलमान है, कोई ईसाई है, कोई कुछ है। हम दर्शन शास्त्रों में जीते है। विचार तंत्रों में जीते है। और वे हमारे लिए इतने महत्वपूर्ण हो गए है कि हम उनके लिए अपनी जान दे सकते है। आदमी शब्दों के लिए मर सकता है। मात्र शब्दों के लिए। कोई उसके परमात्मा को, उसकी परमात्मा की धारणा को गलत कह दे और वह लड़ पड़ेगा। कोई राम या ईसा या किसी ऐसी धारणा को गलत कह दे और वह लड़ पड़ेगा। मनुष्य महज शब्द के लिए लड़ सकता है। हत्या कर सकता है।

शब्द इतना महत्वपूर्ण हो गया है। यह मूढ़ता है। लेकिन यही मूढ़ता हमारा इतिहास है। और हम अभी उसी भांति पेश आ रहे है। एक अकेला शब्द तुम्हारे भीतर इतना उपद्रव पैदा कर सकता है। कि तुम मरने-मारने को तैयार हो जाते हो। हम दर्शनशास्त्र में जीते है। विचार तंत्रों में जीते है।

दर्शनशास्त्र क्या है? तर्कयुक्त ढंग से, व्यवस्था से ढांचे में विचारों के जमाव को हम दर्शनशास्त्र कहते है। और विचार क्या है? व्यवस्था से और अर्थवता के साथ शब्दों के जमाव को हम विचार कहते है। और शब्द क्या है? शब्द वे ध्वनियां है जिनके बारे में आम सहमति है कि उनका मतलब यह या वह होगा।

ध्वनि बुनियादी है, आधारभूत है। मन की बुनियादी संरचना में ध्वनि है। दर्शनशास्त्र उसका शिखर है, लेकिन जिन ईंटों से पूरी इमारत बनी है वे ध्वनियां है। इससे गलत क्या है।

ध्वनि बस ध्वनि है। अर्थ हमारा दिया हुआ है। अर्थ आम सहमति से तय होता है। अन्यथा ध्वनि का काई अर्थ नहीं है। अर्थ हमारा दिया हुआ है। प्रक्षेपण है। अन्यथा राम शब्द मात्र ध्वनि है—अर्थहीन ध्वनि। अर्थ हम उसे देते है। और वह शब्द बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है। और तब हम उसके इर्द-गिर्द विचारों का तंत्र निर्मित करते है। तब तुम सब कुछ कर सकते हो। कुछ भी कर सकते हो; उसके लिए जी मर सकते हो। अगर कोई इस ध्वनि राम का अपमान करे तो तुम क्रुद्ध हो जाओगे। और यह शब्द राम महज एक सहमति है, नियम गत सहमति है। कि इसका यह अर्थ होगा। अन्यथा अपने आप में किसी शब्द का कोई अर्थ नहीं है। वह महज ध्वनि है।

यह सूत्र प्रतिक्रमण करने को, विपरीत दिशा में चलने को कहता है। ध्वनि पर आ जाओ। फिर ध्वनि से भी ज्यादा बुनियादी चीज है भाव। जो कहीं गहरे में छिपा है। इसे समझना होगा।

आदमी शब्द का उपयोग करता है। शब्द का मतलब ऐसी ध्वनि है जिसको सहमति से अर्थ मिला हुआ है। पशु-पक्षी भी ध्वनि का प्रयोग करते है। लेकिन उनकी ध्वनि में कोई भाषा नहीं होती। उनकी कोई भाषा नहीं है। लेकिन वे मात्र भाव के

साथ ध्वनि करते है। कोई पक्षी गाता है। उसके गाने में भाव है। वह किसी भाव को प्रकट कर रहा है। हो सकता है कि वह अपनी प्रेमिका को पुकार रहा हो। या मां को पुकार रहा हो। या हो सकता है, बच्चा भूखा हो, और अपनी पीड़ा जता रहा हो। वह ध्वनि भाव-बोधक है।

ध्वनि के ऊपर शब्द है, विचार है, दर्शनशास्त्र है; ध्वनि के नीचे भाव है। और जब तुम भाव के नीचे नहीं उतरते तब तक मन के नीचे नहीं उतर सकते हो। सारा जगत ध्वनियों से भरा है। सिर्फ मनुष्य का जगत शब्दों से भरा है। मनुष्य का बच्चा भी जब तक भाषा नहीं सीखता है, ध्वनियों का ही प्रयोग करता है।

सच तो यह हे कि भाषा का सारा विकास उन ध्वनियों के आधार पर हुआ है जो दुनियाभर में बच्चें बोलते है। उदाहरण के लिए किसी भी भाषा में मां के लिए शब्द किसी न किसी रूप में मां ध्वनि से जुड़ा है। चाहे वह मातृ, मदर, मां; सब कमोवेश मां ध्वनि से जुड़ा है। बच्चा मां ध्वनि अत्यंत सरलता से बोल सकता है। यह वह पहली ध्वनि है जो बच्चा बोल सकता है। फिरा सारी इमारत मां ध्वनि पर उठती है। बच्चा मां कहना शुरू करता है; क्योंकि यह पहली ध्वनि है जिसे बच्चा आसानी से बोल सकता है। यह नियम सब देश और सब समय के लिए लागू है। शरीर और गले की संरचना ही ऐसी है कि मां बोलना उसके लिए सबसे आसान है। और बच्चे के लिए उसकी मां निकटतम व्यक्ति होता है। सबसे महत्वपूर्ण होता है। इसलिए पहली ध्वनि पहले अर्थपूर्ण व्यक्ति के साथ जुड़ गई और उससे ही मातृ, मदर, मादर, मां शब्द बने।

लेकिन बच्चा जब पहली दफा 'मां' कहता है तो उसमे कोई भाषागत अर्थ नहीं होता। पर भाव अवश्य रहता है। और उसी भाव के कारण यह ध्वनि मां का पर्याय बन गयी। वह भाव ध्वनि से ज्यादा बुनियादी है।

यह सूत्र कहता है कि ''संस्कृत वर्णमाला के अक्षरों की कल्पना करो।''

कोई भी भाषा काम दे देगी। क्योंकि शिव पार्वती से बोल रहे थे। इसलिए उन्होंने संस्कृत का नाम लिया। तुम अंग्रेजी, लैटिन या अरबी भाषा भी इस्तेमाल कर सकते हो। किसी भाषा से भी काम चल जाएगा। संस्कृत यहां इस लिए कही गई है कि क्योंकि शिव पार्वती से संस्कृत में चर्चा कर रहे थे। ऐसी बात नहीं है कि संस्कृत और भाषाओं से श्रेष्ठ है। नहीं, कोई भी भाषा चलेगी।

पहले अपने भीतर, अपनी चेतना में, ''बोध के मधु-भरे दृष्टि पथ'' में अ, ब, से, आदि अक्षरों को अनुभव करो। किसी भी भाषा के अक्षरों से काम चल जाएगा। और यह किया जा सकता है। यह बहुत सुंदर प्रयोग है। अगर तुम इसे प्रयोग करना चाहो तो पहले आँख बंद कर लो और भीतर अपने चेतना को इन अक्षरों से भर जाने दो। चेतना को काली पट्टी समझो और तब उस पर अ, ब, स अक्षरों की कल्पना करो। कल्पना में उन्हें सावचेत होकर और साफ-साफ लिखो और उनको देखो। फिर धीरे-धीरे अक्षर अ को भूल जाओ और उसकी ध्वनि को स्मरण रखो—सिर्फ ध्वनि को।

लेकिन पहले कल्पना की आंखों से देखना जरूरी है; क्योंकि हमारे लिए आँख बहुत महत्वूर्ण है। कान उतने महत्वपूर्ण नहीं है। हम आँख-केंद्रित है। कारण वही है कि आँख अन्या किसी भी चीज से ज्यादा हमें जीने में सहयोग देती है; हमारी नब्बे प्रतिशत चेतना आंखों में बसती है। आँख को हटाकर अपने संबंध में कल्पना करो और तुम मरे-मरे से हो जाओगे। बहुत न्यून बच रहेगा।

इसलिए पहले देखा। दृष्टि को भीतर ले जाओ और अक्षरों को देखो। वैसे अक्षर आंखों की बजाय कानों से ज्यादा संबंधित है; क्योंकि वे ध्वनियां है। लेकिन हमारे लिए वे आँख से जुड़ गए है। क्योंकि हम पढ़ने के इतने आदी हो गए है। बुनियादी रूप से वे कान से संबंधित है, वे ध्वनियां है। तो आँख से शुरू करो। और फिर धीरे-धीर आँख को भूल जाओ। और आँख से कान पर

चले जाओ। पहले उन्हें अक्षरों के रूप में कल्पना करो, फिर उन्हें देखो और फिर उन्हें सूक्ष्मतर ध्वनियों की भांति सुनो और अंत में सूक्ष्मतम भाव की भांति भाव करो।

यह एक बहुत सुंदर प्रयोग है। जब तुम अ कहते हो तो तुम्हारे भीतर क्या भाव होता है। हो सकता है, तुम्हें इसका बोध न हो कि क्या भाव रहता है। जब भी तुम कोई ध्वनि करते हो तो तुम्हारे भीतर कैसे भाव का उदय होता है? हम इतने भाव शून्य हो गये है कि भल ही गये है। जब तुम कोई ध्वनि देखते हो तो क्या होता है? तुम उसका उपयोग किए जाते हो और ध्वनि को बिलकुल भूल जाते हो। उसे तुम निरंतर देखते हो। यदि मैं अ कहता हूं तो तुम पहले अ को देखोगें, तुम्हारे मन में अ दृश्य हो जाएगा। लेकिन अब जब मैं अ कहूं तो उसे देखो नहीं, सुनो। और तब अनुभव करो कि तुम्हारे भाव-केंद्र में क्या घटित होता है। क्या कुछ भी नहीं होता है।

शिव कहते है कि अक्षरों से ध्वनि की तरफ चलो; इन अक्षरों के जरिए ध्वनि को उघाड़ो। पहले ध्वनि को उघाड़ो, और फिरा ध्वनि के जरिए भाव को उघाड़ो। तुम कैसा भाव होता है, इसके प्रति सजग होओ।

कहते है कि मनुष्य बहुत संवेदन शून्य हो गया है; वह अभी धरती पर सब से संवेदन शून्य जानवर है। मैं एक जर्मन कवि का संस्मरण पढ़ रहा था। वह अपने बचपन की एक घटना बताता है। उसके पिता को घोड़ों का बहुत शौक होता है। उसके घर में अनेक घोड़े थे; एक बड़ा अस्तबल था। लेकिन उसका बाप उसे घोड़ों के पास नहीं जाने देता था। बाप डरता था; क्योंकि बच्चा अभी बहुत छोटा था। लेकिन कभी-कभी जब बाप घर पर नहीं होता तो बच्चा चुपचाप अस्तबल में चला जाता था। वहां उसकी एक घोड़े से दोस्ती हो गई। और जब वह लड़का वहां पहुंचता तो घोड़ा हिनहिनाने लगता था।

उस कवि ने लिखा है कि तब मैं भी घोड़े के साथ कुछ ध्वनि करने लगा; क्योंकि उससे भाषा में बोलने का तो कोई उपाय न था। और तब घोड़े के साथ इस तरह संवाद करते हुए मुझे पहल बार ध्वनियों का बोध हुआ, उनके सौंदर्य का, उनके भाव का बोध हुआ।

तुम्हें किसी मनुष्य के साथ संवाद करके यह बोध नहीं हो सकता। क्योंकि मनुष्य मुर्दा हो चला है। घोड़ा ज्यादा जीवंत है और उसके पास भाषा नहीं है। उसके पास शुद्ध ध्वनि है। वह ह्रदय से भरा है। मन से नहीं।

तो कवि ने संस्मरण में कहा ह कि पहली बार मुझे ध्वनि के सौंदर्य का, उसके अर्थ का बोध हुआ। यह वह अर्थ नहीं था जो शब्दों और विचारों से आता है। यह अर्थ भाव से भरा था। अगर वहां और कोई मौजूद होता तो घोड़ा नहीं हिनहिनाता; उससे बच्चा समझ जाता कि यहां मत आओ। यहां कोई है। और तुम्हारे पिता नाराज हो जायेगे। और जब वहां कोई नहीं होता तो घोड़ा हिनहिनाता, जिसका मतलब होता कि आ जाओ, यहां कोई नहीं है। कवि याद करता है कि यह एक साजिश थी जिससे मुझे बहुत सहायता मिली; उस घोड़े ने मेरी बड़ी मदद की।

कवि ने यह भी बताया कि जब मैं जाता था और घोड़े को प्रेम करता था तो यदि मेरा प्रेम घोड़े को पसंद आता तो वह एक ढंग से सिर हिलाता था। और यदि नहीं पसंद आता तो वह सिर ही नहीं हिलाता। पसंदगी की बात और थी। घोड़ा उसे प्रकट करता था। और जब उसका मूड उसकी भाव दशा और होती तो वह उस ढंग से सिर नहीं हिलाता था। और कवि कहता है कि यह सिलसिला वर्षों चला कि मैं जाता और घोड़े को सहलाता। और घोड़े के साथ यह प्रेम इतना प्रगाढ़ था कि मुझे कभी किसी और के साथ उस घनिष्ठता का एहसास नहीं हुआ।

कवि आगे कहता है कि एक दिन मैं घोड़े की गरदन सहला रहा था और वह मस्ती में डोलकर उसका आनंद ले रहा था। कि मैं अचानक पहली बार अपने हाथ के प्रति सजग हो गया। और मुझे ख्याल हुआ कि मैं घोड़े का सहला रहा हूं। इसके साथ ही घोड़े ने डोलना बंद कर दिया। और गरदन हिलाना बिलकुल बंद कर दिया। और वह कवि कहता है, फिर तो मैंने वर्षों कोशिश की;

लेकिन घोड़े से कोई प्रत्युतर नहीं मिला। बहुत समय बीतने पर मुझे बोध हुआ। कि मेरे हाथ के प्रति, मेरे अहंकार के प्रति सजग होते ही मेरा घोड़े के साथ संवाद समाप्त हो गया। और उसे मैं फिर कभी प्राप्त नहीं कर सका। क्या हुआ ?

वह भाव का संवाद था। ज्यों ही अहंकार आता है, शब्द आता है, भाषा आती है। विचार आता है, त्यों ही पूरा तल ही बदल जाता है। अब तुम ध्वनि के ऊपर हो; पहले ध्वनि के नीचे थे। वे ध्वनियां भाव है और घोड़ा भाव समझ सकता था। वह अहंकार की भाषा नहीं समझ सकता था, इसलिए संवाद टूट गया।

कवि ने बहुत चेष्टा की; लेकिन कोई चेष्टा सफल नहीं हुई। कारण यह है कि तुम्हारी चेष्टा भी तुम्हारे अहंकार का ही हिस्सा है। कवि ने अपने हाथ को भूलने की चेष्टा की; लेकिन भूल न सका। यह भूलना असंभव है। तुम जितनी भूलने की कोशिश करोगे उतनी ही हाथ की याद आयेगी। चेष्टा से कुछ भी भूला नहीं जा सकता है। चेष्टा स्मृति को और भी सबल बना देगी। कवि कहता है कि मैं अपने हाथ में उलझ गया; मैं घोड़े को फिर उद्वेलित न कर सका। मैं अपने हाथ ले जाता था, लेकिन उससे कोई उर्जा घोड़े की और नहीं बहती थी। और घोड़े को इसका पता चल गया।

अगर मैं अचानक कोई दूसरी भाषा बोलने लगू तो संवाद बंद हो जाएगा। तब तुम मुझे नहीं समझ सकोगे। और अगर यह भाषा तुम्हारे लिए परिचित नहीं है तो तुम अचानक रूक जाओगे। तुम्हें भाषा ही नहीं समझ पड़ेगी। घोड़ा ऐसे ही रूक गया था।

प्रत्येक बच्चा भाव के साथ जीता है। पहले ध्वनि आती है। तब वह ध्वनि भाव से भरती है। तब शब्द , विचार, व्यवस्था, धर्म और दर्शनशास्त्र आते है। और तब आदमी भाव के केंद्र से दूर-दूर हटता जाता है।

यह सूत्र कहता है कि ध्वनि से भाव पर लौट आओ, भाव की भूमि पर खड़े होओ। भाव तुम्हारा मन नहीं है। यही कारण है कि तुम भाव से डरते हो। तुम तर्क से नहीं डरते। लेकिन तुम भाव से सदा डरते हो। क्योंकि भाव तुम्हें अराजकता में ले जा सकता है। जिस पर तुम्हारा काबू नहीं है। तर्क तुम्हारे नियंत्रण में है। सिर के तुम मालिक हो। सिर के नीचे उतरते ही तुम्हारी मलकियत खत्म हो जाती है। तब तुम्हारा नियंत्रण नहीं रहता; तब तुम मन मानी नहीं कर सकते। भाव ठीक मन के नीचे है; भाव तुम्हारे और तुम्हारे मन के बीच की कड़ी है।

फिर शिव कहते है: ''तब उन्हें अलग छोड़कर मुक्त हो जाओ।''

तब भाव को भी छोड़ दो। स्मरण रहे, भाव के गहनत्म तल पर पहुंचकर ही तुम भाव को छोड़ सकते हो। अगर तुम उनके गहन तल पर नहीं हो तो उन्हें कैसे छोड़ सकते हो? पहले तुम्हें दर्शनशास्त्र को छोड़ना होगा; हिन्दू धर्म, ईसाइयत धर्म, इस्लाम धर्म, को छोड़ना होगा। पहले दर्शन छोड़ना होगा। और तब विचार छोड़ना होगा। फिर क्रमश: शब्द, अक्षर, ध्वनि और भाव को छोड़ना है।

तुम उसी जगह को छोड़ सकते हो जहां तुम हो। तुम उसी सीढ़ी को छोड़ सकते हो जिस पर तुम खड़े हो। उस सीढ़ी को कैसे छोड़ सकते हो, जिस पर तुम खड़े ही नहीं हो, तुम दर्शनशास्त्र की सीढी पर खड़े हो। यह सबसे दूर की सीढी है। यही कारण है कि मैं इस बात पर इतना जोर देता हूं कि जब तक तुम धर्मों को नहीं छोड़ते, तुम धार्मिक नहीं हो सकते।

यह सूत्र, यह विधि बहुत आसानी से प्रयोग की जा सकती है। कठिनाई भाव के साथ नहीं है; कठिनाई शब्दों के साथ है। किसी भाव को तुम वैसे ही छोड़ सकते हो जैसे तुम अपने कपड़े उतारते हो। जैसे तुम अपने शरीर के कपड़े उतरते कर फेंक देते हो। ठीक वैसे ही तुम अपने भावों को अपने से अलग कर सकेत हो। लेकिन अभी तुम यह नहीं कर सकते, अभी यह करना असंभव है। इसलिए कदम-कदम चलना ठीक है।

अ, ब, स, आदि अक्षरों को कल्पना की आंखों से देखो, और तब उनके लिखित रूप से हटकर उनके सुने हुए स्वर पर ध्यान दो। अब तुम गहराई में उतर रहे हो। सतह पीछे छूट रहा है। तुम गहराई में डूब रहे हो। और अब देखो कि किसी विशेष ध्वनि से क्या भाव पैदा होता है।

ऐसी विधियों के कारण ही भारत अनेक चीजों का अविष्कार कर सका। जो भाव-विशेष से संबंधित है। इन विज्ञान के कारण ही मंत्र का विकास हुआ। एक खास ध्वनि एक खास भाव के साथ जुड़ी है; इसके अन्यथा नहीं हो सकता। तो तुम अपने भीतर वह ध्वनि पैदा करो तो उससे उस विशेष भाव का जन्म होगा। तुम एक मंत्र के द्वारा उससे संबंधित भाव पैदा कर सकते हो। मंत्र से वह वातावरण पैदा होता है। जिसमे वह विशेष भाव जन्म लेता है।

इसलिए यूं ही किसी मंत्र का उपयोग मत करो। वह ठीक नहीं है; वह तुम्हारे लिए खतरनाक सिद्ध हो सकता है। अगर तुम नहीं जानते हो या वह व्यक्ति नहीं जानता है जिससे तुम मंत्र लेते हो किस ध्वनि से कौन-कौन भाव निर्मित होता है। या अगर तुम नहीं जानते हो कि तुम्हें उस भाव की जरूरत है या नहीं। तो मंत्र का उपयोग मत करो। मारण मंत्र जैसे भी मंत्र है। अगर तुम मारण मंत्र का जाप करोगे तो एक निश्चित अवधि के भीतर तुम्हारी मृत्यु हो जाएगी। वह मंत्र तुम्हारे भीतर मृत्यु की कामना पैदा कर देगा। और एक निश्चित समय के अंदर तुम समाप्त हो जाओगे।

फ्रायड कहता है कि आदमी में दो बुनियादी वृतियां है। उनमें एक है जीवेषणा, इरोस; यानि जीने की कामना। और दूसरी है मृत्यु एषणा थानाटोस; यानी मरने की कामना, मृत्यु की चाह।

ऐसी ध्वनियां है जिनके सतत उच्चारण से तुम्हारे भीतर मरण-कामना का जन्म होगा, तुम मृत्यु में समा जाना चाहोगे। वैसे ही ऐसी ध्वनियां है जो तुम्हें अधिक जीवेषणा प्रदान करेंगी। जिनसे जीने से जीवन में तुम्हारा रस बढ़ जाएगा; तुम ज्यादा जीवित रहना चाहोगे। तो अगर तुम अपने भीतर उन ध्वनियों को पैदा करोगे तो उनसे संबंधित भाव तुम्हें अभिभूत कर देंगे। ऐसी ध्वनियां को पैदा करोगे तो उनसे संबंधित भाव तुम्हें अभिभूत कर देंगे। ऐसी ध्वनियां है जिनसे मौन और शांति प्राप्त होती है और ऐसी ध्वनियां भी है जिनसे क्रोध का जन्म होता है। इसलिए जब तक किसी जानकर गुरु से मंत्र न मिले तब तक मंत्र का प्रयोग करना ठीक नहीं है।

जब तुम ध्वनि से नीचे उतरते हो तो तुम्हें पता चलता है कि प्रत्येक ध्वनि का अपना एक भाव है, जो उसके साथ चलता है। जो उसके पीछे रहता है। जब तुम भाव में गति कर जाओ, जब तुम ध्वनि को भूल जाओ और भाव में सरक जाओ। इसे समझना कठिन है; लेकिन यह तुम कर सकते हो।

और इसके लिए विशेष विधियां है। विशेषकर झेन साधना में इसके लिए अलग विधियां है। किसी साधक को एक खास मंत्र दिया जाता है। और अगर वह उसका ठीक प्रयोग करता है तो यह बात गुरु उसके चेहरे से जान लेता है। चेहरा देखकर ही गुरु जान जाता है कि साधक ठीक प्रयोग कर रहा है या नहीं। क्योंकि ठीक प्रयोग से एक भाव विशेष का उदय होता है। अगर ध्वनि ठीक से पैदा की जाए तो भाव का आविर्भाव निशचित है। और यह भाव चेहरे पर प्रकट होगा; तुम गुरु को धोखा नहीं दे सकते। वह तुम्हारे चेहरे से जान लेगा। कि तुम्हारे भीतर क्या घट रहा है।

डोजो एक बड़ा झेन गुरु हुआ। जब वह शिष्य ही था तो उसे बड़ी हैरानी होती है कि मेरे गुरु यह कैसे जानते है कि मेरे भीतर क्या अनुभव घट रहा है। और झेन गुरु अपना डंडा लिए घूमता था और शिष्य के सिर पर डंडे से चोट कर देता था। अगर तुम्हारे मंत्र के प्रयोग से कोई भूल हो रही है तो वह तुम्हारे सिर पर चोट कर देगा। तो डोजो ने पूछा कि आप कैसे जान लेते है कि ठीक वक्त पर ही चोट करते है। आप जानते कैसे है।

चेहरा भाव को प्रकट कर देता है। वह ध्वनि को नहीं प्रकट कर सकता, लेकिन भाव को प्रकट कर देता है। और तुम जितने गहरे जाओगे उठता ही तुम्हारा चेहरा अभिव्यक्ति के योग्य, नमनीय और तरल होता जाएगा। वह तुरंत बता देता है कि भीतर क्या हो रहा है। अभी जो तुम्हारा चेहरा वह नहीं रहेगा। वह तो मुखौटा है, चेहरा नहीं। जब तुम भीतर जाते हो तो मुखौटे गिर जाते है। क्योंकि उनकी जरूरत नहीं रहती। मुखौटे तो दूसरों के लिए होते है।

यही कारण है कि पुराने गुरु संसार छोड़ने के लिए जोर देते थे। यह इसलिए कि तुम आसानी से अपने मुखौटे से मुक्त हो जाओ। अन्यथा जब तक दूसरे रहेंगे तुम उनके लिए मुखौटे लगाते रहोगे। तुम अपने पति या पत्नी को प्रेम नहीं करते हो; लेकिन तुम्हें एक मुखौटा पहले रहना होता है। एक प्रीति पूर्ण चेहरा बनाए रखना पड़ता है। जिस क्षण तुम अपने घर में प्रवेश करते हो, तुम अपना चेहरा सजाने लगते हो, तुम भीतर जाते ही मुस्कुराने लगते हो। वह तुम्हारा असली चेहरा नहीं है।

झेन गुरु इस बात पर जोर देते थे कि पहले तुम जानो कि तुम्हारा मौलिक चेहरा क्या है। मौलिक चेहरे के साथ सब कुछ आसान हो जाता है। तब गुरु को सब पता चल जाता है। कि क्या हो रहा है। इसलिए ज्ञानोपलब्धि की घटना बतानी नहीं पड़ती थी। अगर कोई साधक ज्ञान को उपलब्ध हो ता था तो उसे यह बात गुरु को बताने की जरूरत नहीं पड़ती थी। गुरु अपने आप ही जान लेता था और वही शिष्य को कहता था। शिष्य को अपनी तरफ से जाकर गुरु को बताने की इजाजत नहीं थी। उसकी जरूरत नहीं थी। चेहरा बात देता था, आँख बता देती थी। चलने का ढंग बात देता था। उसका प्रत्येक कृत्य, उसकी हरेक भाव-भंगिमा बताती है कि वह पहुंच गया।

जब तुम ध्वनि से भाव पर जाते हो तो तुम बहुत ही आनंदित संसार में गति करते हो—एक अस्तित्वगत संसार में। तुम मन से दूर हट जाते हो। भाव अस्तित्वगत है; भाव शब्द का अर्थ ही वह है। तुम भावों को अनुभव करते हो। तुम उन्हें देख नहीं सकते, सुन नहीं सकते, सिर्फ अनुभव कर सकते हो।

और जब तुम इस बिंदू पर पहुंचते हो तो छलांग लगा सकते हो। यह आखिरी कदम है। अब तुम अनंत खड्ड के पास खड़े हो; अब कूद सकते हो। और अगर तुम भाव से छलांग लगाते हो तो तुम अपने में छलांग लगाते हो। वह अनंत, वह अतल तुम हो—मन की तरह नहीं अस्तित्व की तरह; संचित भविष्य की तरह नहीं, बल्कि वर्तमान की तरह, यहां और अभी की तरह। तुम मन से अस्तित्व पर गति कर जाते हो; और भाव उनके बीच सेतु का काम करता है।

लेकिन भाव पर पहुंचने के लिए तुम्हें सो चीजें छोड़नी होगी। शब्द, ध्वनि और मन की सब प्रवंचना छोड़नी होगी।

''तब उन्हें अलग छोड़कर मुक्त हो जाओ।''

तब तुम मुक्त हो। ''मुक्त हो जाओ'' का यह मतलब नहीं है कि तुम्हें मुक्त होने के लिए कुछ करना होगा। ''तब उन्हें अलग छोड़ कर मुक्त हो जाओ।'' का मतलब है कि तुम मुक्त हो।

होना है मुक्त; मन बंधन है। इससे ही कहा है कि मन संसार है। संसार को मत छोड़ो; तुम उसे छोड़ भी नहीं सकते। अगर मन है तो तुम दूसरा संसार निर्मित कर लोगे। बीज बचा है। तुम पहाड़ पर जा सकते हो। तुम भागकर किसी आश्रम में रह सकते हो। लेकिन मन तुम्हारे साथ जाएगा। मन को छोड़कर तो नहीं जा सकते। और मन के साथ संसार चलता है। तुम फिर दूसरा संसार गढ़ लोगे। आश्रम में भी तुम संसार बनाने लगोगे; क्योंकि बीज साथ में है। तुम फिर संबंध बना लोगे। चाहे वो संबंध पेड़ से हो पशु पक्षियों से ही क्यों न हो। फिर तुम्हारी अपेक्षाएं खड़ी हो जाएंगी। जाल बढ़ता ही जाएगा। क्योंकि बीज मौजूद है। तुम फिर संसार में होगे। मन ही संसार है; मन को तुम कहीं नहीं छोड़ सकते हो।

तुम मन को तभी छोड़ सकते हो जब तुम अपने भीतर यात्रा करो। वही एक हिमालय है; कोई दूसरा हिमालय नहीं है। अगर तुम शब्द से भाव पर और भाव से होने पर आ जाओ तो तुम संसार से मुक्त हो जाओगे। और जब तुम इस अस्तित्व के अनंत विराट को जान लोगे तब तुम कही भी रह सकते हो। नरक में भी रह सकते हो। तब कोई फर्क नहीं पड़ेगा। अगर मन नहीं है। तो नरम तुममें प्रवेश नहीं कर सकता। और मन के साथ सिर्फ नरक आता है। मन नरक का द्वार है।

''उन्हें अलग छोड़कर मुक्त हो जाओ।''

लेकिन भाव के साथ सीधा प्रयोग मत करो; तुम सफल न हो सकोगे। पहले शब्दों के साथ प्रयोग करो। लेकिन अगर तुमने दर्शनशास्त्र नहीं छोड़ा, विचारों को नहीं छोड़ा तो शब्दों के साथ भी सफल न हो पाओगे। शब्द सिर्फ इकाइयां है। और अगर तुम शब्दों को महत्व दोगे तो तुम उन्हें नहीं छोड़ सकते हो।

यह भलीभाँति जान लो कि भाषा मनुष्य की बनाई हुई है। उसका उपयोग है; वह जरूरी है। और ध्वनियों को जो अर्थ मिला है। वह भी हमारा दिया हुआ है। इस बात को भलीभाँति समझ लो तो यात्रा सरल हो जाएगी। अगर कोई कुरान या वेद के विरूद्ध बोलता है तो तुम्हें कैसा लगता है। क्या तुम उस पर हंस सकते हो? या कि तुम्हारे भीतर कुछ भिंच जाता है। कोई गीता का अपमान कर रहा है, या कोई कृष्ण, राम या क्राइस्ट के खिलाफ बोल रहा है। क्या तुम उस पर हंस सकते हो। क्या तुम देख सकते हो कि वे महज शब्द है।

नहीं तुम्हें चोट लगेगी। और तब शब्दों को छोड़ना कठिन होगा। समझना होगा कि शब्द सिर्फ शब्द है। वे ध्वनियां है। जिन्हें सर्वसम्मत अर्थ दिया गया है। वे और कुछ भी नहीं है। इस बात को ठीक से आत्मसात कर लो। हकीकत यही है कि शब्द मात्र शब्द है।

पहले शब्दों से विरक्त होओ। शब्दों से विरक्त होकर ही तम जानोंगे कि वे ध्वनियां भर है। यह वैसे ही है जैसे मिलिट्री में वि संख्याओं का प्रयोग करते है। कोई सिपाही एक सौ एक नंबर का सिपाही है। वह एक सौ एक के साथ तादात्म्य कर ले सकता है। और अगर कोई व्यक्ति एक सौ एक नंबर के विरूद्ध कुछ कहेगा तो उसे बुरा लगेगा। वह झगडा करेगा। और एक सौ एक महज संख्या है। लेकिन उससे उसका तादात्म्य हो गया है।

तुम्हारा नाम भी संख्या जैसा ही है—गिनती के लिए है। उसके बिना काम चलाना कठिन होगा वह बस एक लेबल है। कोई दूसर लेबल भी वही काम देगा। लेकिन तुम्हारे लिए वह लेबल ही नहीं रहा है। वह कुछ और हो गया है। तुम्हारा नाम तुममें गहरे उतर गया है। वह अब तुम्हारा अहंकार बन गया है। इसीलिए बड़े-बूढे कहते है कि नाम पैदा करो, अपने नाम की शान रखो। ऐसा कुछ करो कि मरने के बाद भी तुम्हारा नाम रहे।

यह नाम पहले भी नहीं था। और वह कोड़ नंबर से ज्यादा नहीं है। तुम मरोगे और नाम रहेगा। जब तुम ही नहीं रहोगे तो नाम कैसे रहेगा।

शब्दों को देखा: उनकी व्यर्थता को, अर्थहीनता को देखा। उनसे आसक्त मत होओ, लगाव मत बनाओ। केवल तभी इस विधि का प्रयोग तुम कर सकोगे।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—25

तंत्र-सूत्र—विधि—38 (ओशो)

ध्वनि-संबंधी दूसरी विधिः

ध्वनि के केंद्र में स्नान करो, मानो किसी जलप्रपात की अखंड ध्वनि में स्नान कर रहे हो

" ध्वनि के केंद्र में स्नान करो, मानो किसी जलप्रपात की अखंड ध्वनि में स्नान कर रहे हो। या कानों में अंगुलि डालकर नादों के नाद, अनाहत को सुनो।"

इस विधि का प्रयोग कई ढंग से क्या जा सकता है। एक ढंग यह है कि कहीं भी बैठकर इसे शुरू कर दो। ध्वनियां तो सदा मौजूद है। चाहे बाजार हो या हिमालय की गुफा, ध्वनियां सब जगह है। चुप होकर बैठ जाओ।

और ध्वनियों के साथ एक बड़ी विशेषता है, एक बड़ी खूबी है। जहां भी, जब भी कोई ध्वनि होगी, तुम उसके केंद्र होगे। सभी ध्वनियां तुम्हारे पास आती है, चाहे वे कहीं से आएं, किसी दिशा से आएं। आँख के साथ, देखने के साथ यह बात नहीं है। दृष्टि रेखाबद्ध है। मैं तुम्हें देखता हूं तो मुझसे तुम तक एक रेखा खिंच जाती है। लेकिन ध्वनि वर्तुलाकार है; वह रेखाबद्ध नहीं है। सभी ध्वनियां वर्तुल में आती है। और तुम उसके केंद्र हो। समूचे ब्रह्मांड का केंद्र। हरेक ध्वनि वर्तुल में तुम्हारी तरफ यात्रा कर रही है।

यह विधि कहती है: ''ध्वनि के केंद्र में स्नान करो।''

अगर तुम इस विधि का प्रयोग कर रहे हो तो तुम जहां भी हो वहीं आंखें बंद कर लो और भाव करो कि सारा ब्रह्मांड ध्वनियों से भरा है। तुम भाव करो कि हरेक ध्वनि तुम्हारी और बही आ रही है। और तुम उसके केंद्र हो। यह भाव भी कि मैं केंद्र हूं तुम्हें गहरी शांति से भर देगा। सारा ब्रह्मांड परिधि बन जाता है। और तुम उसके केंद्र होते हो। और हर चीज, हर ध्वनि तुम्हारी तरफ बह रही है।

''मानों किसी जलप्रपात की अखंड ध्वनि में स्नान कर रहे हो।''

अगर तुम किसी जलप्रपात के किनारे खड़े हो तो वहीं आँख बंद करो और अपने चारो और से ध्वनि को अपने ऊपर बरसतें हुए अनुभव करो। और भाव करो कि तुम उसके केंद्र हो।

अपने को केंद्र समझने पर यह जोर क्या है? क्योंकि केंद्र में कोई ध्वनि नहीं है; केंद्र ध्वनि शून्य है। यही कारण है कि तुम्हें ध्वनि सुनाई पड़ती है; अन्यथा नहीं सुनाई पड़ती। ध्वनि ही ध्वनि को नहीं सुन सकती। अपने केंद्र पर ध्वनि शून्य होने के कारण तुम्हें ध्वनियां सुनाई पड़ती है। केंद्र तो बिलकुल ही मौन है, शांत है। इसलिए तुम ध्वनि को अपनी और आते, अपने भीतर प्रवेश करते, अपने को घेरते हुए सुनते हो।

अगर तुम खोज लो कि यह केंद्र कहां है, तुम्हारे भीतर वह जगह कहां है। जहां सब ध्वनियां बहकर आ रही है। तो अचानक सब ध्वनियां विलीन हो जाएंगी और तुम निर्ध्वनि में, ध्वनि शून्यता में प्रवेश कर जाओगे। अगर तुम उस केंद्र को महसूस कर सको जहां सब ध्वनियां सुनी जाती है तो अचानक चेतना भीतर मुड़ जाती है। एक क्षण तुम निर्ध्वनि से भरे संसार को सुनोंगे और दूसरे ही क्षण तुम्हारी चेतना की और मुड़ जाएगी और तुम बस ध्वनि को, मौन को सुनोंगे। जो जीवन का केंद्र है। और एक बार तुमने उस ध्वनि को सुन लिया तो कोई भी ध्वनि तुम्हें विचलित नहीं कर सकती। वह तुम्हारी और आती है; लेकिन वह तुम तक पहुँचती नहीं है। वह सदा तुम्हारी और बह रही है। लेकिन वह कभी तुम तक पहुंच नहीं पाती। एक बिंदु है जहां कोई ध्वनि नहीं प्रवेश करती है; वह बिंदु तुम हो।

बीच बाजार में इस विधि का प्रयोग करो। बाजार जैसा कोई दूसरा स्थान नहीं है। वह शोरगुल है, पागल शोरगुल से इस कदर भरा रहता है। लेकिन इस शोरगुल के संबंध में सोच-विचार मत करो; यह मत कहो कि यह ध्वनि अच्छी है, यह बुरी है। यह उपद्रव पैदा करती है, यह सुंदर और लयपूर्ण है। ध्वनियों के संबंध में तुम्हें सोच-विचार नहीं करना है। तुम्हारा यह काम नहीं है। कि जो भी ध्वनि तुम्हारी तरफ बहकर आए उस पर तुम विचार करो कि यह काम नहीं है। कि यह अच्छी है, बुरी है, सुंदर है, तो तुम इतना ही स्मरण रखना है कि मैं केंद्र हूं और सभी ध्वनियां बहकर मेरे पास आ रही है।

शूरू-शूरू में घबराहट होगी; क्योंकि तुम अपने चारों और उठने वाली सब ध्वनियों को नहीं सुनते हो। तुम सुनने में चुनाव करते हो। अब वैज्ञानिक शोध करती है कि हम सिर्फ दो प्रतिशत सुनते है। अट्ठानवे प्रतिशत अनसुना कर देते है। अगर तुम शत प्रतिशत सुनो तो तुम पागल हो जाओगे। अपने चारों और की आवाज़ों को शत-प्रतिशत सुनकर तुम पागल होने सक नहीं बच सकते।

पहले यह समझा जाता था कि इंद्रियाँ द्वार दरवाजे है। जिनसे बाहर की दुनियां भीतर प्रवेश करती है। लेकिन अब वे कहते है कि ऐसी बात नहीं है। वे दरवाजे नहीं है, वे उतनी खुली नहीं है जितना समझा जाता था। वे द्वार नहीं है, बल्कि वे नियंत्रण का, सेंसर का काम करती है; वे पहरेदार की तरह हर क्षण देखती रहती है कि किसे भीतर जाने दिया जाए और किसे नहीं। दो प्रतिशत सुनकर ही तो तुम पागल हो गए हो; शत-प्रतिशत सुनकर तुम्हारा क्या हाल होगा।

तो जब तुम इस विधि का प्रयोग शुरू करोगे तो तुम्हारा सिर चकराने लगेगा। उस से मत डरना। केंद्र पर रहो, और जो कुछ भी हो रहा है उसे होने दो। सब कुछ को आने दो। अपनी इंद्रियों को शिथिल करो, पहरेदारों को आराम करने दो। सब कुछ को विश्राम में जाने दो और तब सब कुछ को अपने भीतर प्रवेश करने दो। अब तुम ज्यादा तरल हो गए हो; तुम खुले हो। और सब ध्वनियां सब आवाजें तुम्हारी और आ रही है, तब ध्वनियों के साथ चल पड़ो और इस केंद्र पर पहुंचो जहां तुम उन्हें सुनते हो।

ध्वनियों काम में नहीं सुनी जाती है। कान उन्हें सुन भी नहीं सकते; कान सिर्फ संचारण करने का काम करते है। और इस संचारण के क्रम में वे उस सब को छांट देते है जो तुम्हारे लिए जरूरी नहीं है। वे चुनाव करते है, वे छाँटते है, और फिर वे चुनी हुई ध्वनियां तुम्हारे भीतर प्रवेश करती है। अब भीतर खोजों कि तुम्हारा केंद्र कहां है। कान केंद्र नहीं है। तुम कहीं किसी गहराई में सुनते हो। कान तो कुछ चुनी हुई ध्वनियों को ही भेजते है। तुम कहां है? तुम्हारा केंद्र कहां है?

अगर तुम ध्वनियों के साथ प्रयोग जारी रखते हो तो देर अबेर तुम जानकर चकित होगे कि यह केंद्र सिर में नहीं है। मालूम तो होता है कि सिर में है। क्योंकि तुम ध्वनि नहीं, शब्द सुनते हो, शब्दों के लिए तो सिर ही केंद्र है; लेकिन ध्वनि के लिए वह केंद्र

नहीं है। यही कारण है कि जापान में वह कहते है कि आदमी सिर से नहीं, पेट से सोचता है। जापान में उन्होंने बहुत लंबे समय से ध्वनि पर काम किया है।

तुमने मंदिरों में घंटे लगे देखे होंगे। वे वहां साधकों के लिए ही ध्वनि पैदा करने के लिए रखे गए है। कोई साधक ध्यान कर रहा है और घंटे बजाएं जा रहे है। तुम्हें लगेगा कि इस घंटे की आवाज से साधक के लिए बाधा खड़ी हो रही है। लगेगा कि ध्यान करने वाले को बाधा महसूस हो रही है। यह क्या उपद्रव है। मंदिर में आने वाला हरेक दर्शनार्थी घंटे को बजा देता है।

पर यह आवाज उपद्रव नहीं है। वह साधक तो इस ध्वनि की प्रतीक्षा कर रहा है। हर दर्शनार्थी इसमे सहयोग दे रहा है। बार-बार घंटा बजता है। ध्वनि होती है और ध्यानी फिर अपने में डूब जाता है। वह उस केंद्र को देखता है जहां वह ध्वनि गहरे में उतरती जाती है। पहली चोट दर्शनार्थी घंटे पर लगाता है। दूसरी चोट कही ध्यानी के भीतर होती है। यह दूसरी चोट कहां लगती है।

यह दूसरी चोट सदा पेट में लगती है; सिर में कभी नहीं। अगर चोट सिर में लगे तो समझना चाहिए कि वह ध्वनि नहीं है, शब्द है। तब तुमने ध्वनि के संबंध में सोचना शुरू कर दिया। तब शुद्धता नष्ट हो गई।

अभी गर्भस्थ शिशुओं पर बहुत अनुसंधान हो रहा है। उन्हें भी ध्वनि का आघात लगता है। और वे भी प्रतिक्रिया करते है। वे भाषा के प्रति प्रतिक्रिया नहीं कर सकते, अभी उनके सिर नहीं है। उन्हें अभी तर्क करना नहीं आता है। वे भाषा और समाज-सम्मत नियम नहीं जानते है। वे भाषा नहीं जानते है, लेकिन वे ध्वनि ठीक कसे सुनते है। और हर ध्वनि मां से ज्यादा बच्चे को प्रभावित करती है। क्योंकि मां ध्वनि नहीं सुनत वह शब्द सुनती है। और हम पागल और अराजक आवाजें पैदा करते रहते है और वे आवाजें गर्भस्थ बच्चों को पीडित कर रही है। वे बच्चे पागल पैदा होंगे। तुमने उन्हें बहुत उपद्रव में डाल दिया है।

ध्वनि से पौधे भी प्रभावित होते है। अगर पौधों के निकट संगीत पूर्ण ध्वनि पैदा की जाए तो उनका विकास अधिक होता है। और उनके निकट अराजक ध्वनि पैदा करने से विकास कम होता है। तुम उन्हें बढ़ने में मदद दे सकते हो। ध्वनियों के द्वारा तुम उन्हें बहुत मदद दे सकते हो।

अब तो वह कहते है कि ट्रैफिक के शोर से, आधुनिक शहरों में होने वाले यातायात के शोर से आदमी पागल हुआ जा रहा है। ट्रैफिक का शोर अराजक है, उसमे जरा भी लयबद्धता नहीं है। कहते है कि यह शोर अपनी चरम सीमा पर पहुंच गया है। और अगर वह इससे भी आगे गया तो आदमी के लिए कोई आशा नहीं रहेगी।

ये ध्वनियां निरंतर तुम पर आघात कर रही है। अगर तुम उनके संबंध में विचार करोगे तो वह तुम्हारे सिर पर चोट करेंगी। और सिर केंद्र नहीं है। केंद्र नाभि में है—नाभि केंद्र, इसलिए ध्वनियों के संबंध में विचार मत करो।

सभी मंत्र अर्थहीन ध्वनियां है। अगर कोई गुरु किसी मंत्र को अर्थ बताता है तो समझना चाहिए कि वह मंत्र ही नहीं है। यह जरूरी है कि मंत्र में कोई अर्थ न हो। उसकी उपयोगिता है; लेकिन उसमें कोई अर्थ नहीं है। वह तुम्हारे भीतर कुछ करेगा। लेकिन उसमे कोई अर्थ नहीं है। उसे तुम्हारे भीतर शुद्ध ध्वनि के रूप में ही काम करना है। यही कारण है कि मंत्र का विकास हुआ। उसमें कोई अर्थ नहीं है। वह अर्थहीन है। वह शुद्ध ध्वनि है। अगर तुम्हारे भीतर यह शुद्ध ध्वनि पैदा की जा सके, अगर तुम इसे पैदा कर सको तो भी यही विधि प्रयोग की जा सकती है।

''ध्वनि के केंद्र में स्नान करो, मानों किसी जलप्रपात की अखंड ध्वनि में स्नान कर रहे हो। या कानों में अंगुलि डालकर नांदों के नाद, अनाहत नाद को सुनो।''

तुम अंगुलि के जरिए कानों को बंद करके भी ध्वनि पैदा कर सकते हो। कोई भी चीज जो बलपूर्वक कानों को बंद कर दे, काम दे देगी। उस हालत में भी एक ध्वनि सुनाई देती है। वह कौन सी ध्वनि है जो कान के बंद करने पर सुनाई देती है? और उसे तुम क्यों सुनते हो?

अमेरिका में ऐसी घटना घटी। किसी नगर के पास से रेलगाड़ी गुजरती थी। आधी रात उसके गुजरने का समय था; कोई दो बजे। फिर एक नई लाइन का उदघाटन हुआ; पुरानी लाइन से गाड़ी का चलना बंद हो गया। लेकिन एक बड़ी हैरानी की बात हुई कि जिस इलाके से पुरानी लाइन गुजरती थी और जिधर से गाड़ी का चलना बंद हो गया था। उन लोगों ने पुलिस से शिकायत की कि उन्हें रात के दो बजे के समय कुछ रहस्यपूर्ण आवाज सुनाई देती है। और इस तरह की इतनी शिकायतें आईं कि पुलिस को जांच-पड़ताल करनी पड़ी।

और पहली बार पता चला कि अगर कोई ध्वनि तुम निरंतर सुनते रहे हो तो और फिर वह बंद हो जाए तो तुम उसकी अनुपस्थिति को सुनने लगोगे। यह मत सोचो कि बस तुम्हें उसका सुनाई देना बंद हो जाएगा; उसका अभाव सुनाई देने लगेगा।

यह ऐसा ही है कि मैं यहां तुम्हें देख रहा हूं और फिर अगर मैं आंखें बंद कर लूं तो तुम्हारा निगेटिव, तुम्हारा उलटा रूप दिखाई देने लगेगा। अगर तुम खिड़की को देखो और फिर आंखें बंद कर लो तो तुम्हें खिड़की का निगेटिव दिखाई देने लगेगा। और यह निगेटिव चित्र इतना जोरदार हो सकता है कि अगर तुम अचानक दीवार को देखो, तो वह दीवार पर प्रक्षेपित हो जाएगा और तुम उसे देख सकोगे।

''या कानों में अंगुलि डालकर नांदों के नाद, अनाहत को सुनो।''

वह निगेटिव ध्वनि ही अनाहत कहलाती हे। क्योंकि वह दरअसल ध्वनि नहीं है। ध्वनि की अनुपस्थिति है। या वह नैसर्गिक ध्वनि है; क्योंकि वह पैदा नहीं की जाती है। सभी ध्वनियां पैदा की जाती है। लेकिन तुम जो ध्वनि कान बंद करके सुनते हो वह अनाहत ध्वनि है। अगर सारा संसार पूरी तरह मौन हो जाए तो तुम उस मौन का भी सुनोंगे।

पास्कल ने कही कहा है कि जिस क्षण मैं अनंत ब्रह्मांड की सोचता हूं, उसका मौन मुझे बहुत भयभीत कर देता है। उसे मौन भयभीत करता है, क्योंकि ध्वनियां तो पृथ्वी पर ही है। ध्वनि के लिए वायुमंडल चाहिए। जिस क्षण तुम पृथ्वी के वायुमंडल के बाहर निकल जाते हो वहां कोई ध्वनि नहीं मिलेगी। वहां परम मौन है। उस मौन को तुम पृथ्वी पर भी पैदा कर सकते हो, अगर तुम अपने दोनों कान पूरी तरह से बंद कर लो। तूम धरती पर होकर भी धरती पर नहीं हो, तुम ध्वनि से नीचे उतर गये।

अंतरिक्ष यात्रियों को अनेक चीजों के लिए प्रशिक्षित किया जा रहा है। उनमें उन्हें मौन में रहना भी सिखाया जाता है। उन्हें ध्वनि शून्य कक्षों में रखकर निर्ध्वनि में रहने का अभ्यास कराया जाता है। अन्यथा वे अंतरिक्ष में जाकर पागल हो जाएंगे। उन्हें अनेक समस्यों का सामना करना पड़ता है। उन्हें सबसे गंभीर समस्या यह है कि मनुष्य के ध्वनि भरे जगत के बाहर कैसे रहा जाए। वहां तुम अलग थलग पड़ जाते हो। अकेले हो जाते हो।

अगर तुम किसी जंगल में खो जाओ और कोई आवाज तुम्हें सुनाई दे तो उसके स्त्रोत को न जानते हुए भी तुम कम भयभीत होते हो। तुम्हें लगता है कि कोई है। तुम अकेले नहीं हो; कोई है। सन्नाटे में तुम अकेले हो जाते हो। अगर तुम भीड़ में अपने दोनों कान पूरी तरह से बंद करके अपने में डूब जाओ। तो तुम अकेले हो जाओगे। भीड़ विलीन हो जाएगी। क्योंकि तुम शोरगुल से ही भीड़ को जानते हो।

''कानों में अंगुलि डालकर नांदों के नाद, अनाहत नाद को सुनो।''

यह ध्वनियों की अनुपस्थिति बहुत ही सूक्ष्म अनुभव है। यह तुम्हें क्या दे सकता है? जिस क्षण ध्वनियों नहीं रहती है, तुम अपने पर आ जाते हो। ध्वनि के साथ तुम अपने से दूर चले जाते हो। ध्वनि के साथ तुम दूसरे की तरफ चल पड़ते हो। इसे समझने की कोशिश करो। ध्वनि से हम दूसरे से संबंधित होते है। दूसरे से संवाद करते है।

इसीलिए एक अंधा आदमी भी उतनी कठिनाई में नहीं होता जितनी कठिनाई में गूंगा होता है। किसी बहरे आदमी का निरीक्षण करो; वह अमानुषिक मालूम पड़ता है। अंधा आदमी अमानुषिक नहीं मालूम पड़ता, लेकिन गूंगा अमानुषिक मालूम पड़ता है। गुँगा आदमी अंधे से अधिक कठिनाई में होता है। अंधा आदमी देख नहीं सकता। लेकिन वह दूसरे से संवाद तो कर सकता है। वह समाज और परिवार वह बडी मनुष्यता का अंग हो सकता है। वह बातचीत कर सकता है। गुँगा आदमी अचानक समाज से बहार पड़ जाता है।

तुम कल्पना करो कि तुम एक वातानुकूलित और साउंड-प्रूफ कांच के कमरे में हो। वहां न कोई ध्वनि पहूंच सकती है। वहां तुम चीख नह सकते। अपने को अभिव्यक्त करने के लिए कुछ भी नहीं कर सकते हो। एक बहरा आदमी सतत ऐसे ही दुख स्वप्न में जीता है। संवाद के बिना वह मनुष्यता का अंग नहीं हो पाता है। अभिव्यक्ति के बिना उसके जीवन का फूल नहीं खिल सकता है। वह किसी के भी संपर्क में नहीं आ सकता है। वह तुम्हारे साथ होकर भी तुमसे बहुत दूर रहता है।

अगर ध्वनि दूसरे तक पहुंचने का वाहन है तो मौन स्वयं तक पहुंचने का वाहन है। ध्वनि के द्वारा तुम दूसरे के साथ संवाद करते हो; मौन के द्वारा तुम अपने में, अपने अतल में उतर जाते हो। यही कारण है कि अनेक विधियों में अंतर्यात्रा के लिए मौन को काम में लाया जाता है। बिलकुल गूंगे और बहरे हो जाओ—जरा देर के लिए ही सही। तब तुम अपने अतिरिक्त और कहीं नहीं जा सकते हो। अचानक तुम्हें लगेगा की तुम अपने अंतस में विराज गये हो।

गुरूजिएफ अपने शिष्यों को लंबे मौन में जाने को कहता था। वह इस बात पर जोर देता था कि मौन में न सिर्फ भाषा का व्यवहार बंद रहे। बल्कि आँख या हाथ के इशारे से भी बातचीत न की जाए। किसी तरह का भी संवाद निषिद्ध था। मौन का अर्थ ही है, संवाद शून्यता।

तुमने शायद ये देखा होगा कि जो लोग खूब बात करना जानते है वे समाज में प्रसिद्ध हो जाते है; जो अपने विचारों को ठीक से संप्रेषित कर सकते है वे नेता हो जाते है। धार्मिक, राजनीतिक या साहित्यक, किसी भी क्षेत्र में यही होता है कि जो कुशलता से अपने विचार व्यक्त कर सकते है, जो निपुणता से बातचीत कर सकते है, वे नेता बन जाते है? क्योंकि वे ज्यादा से ज्यादा लोगों तक सर्वसाधारण तक पहुंच सकते है।

क्या तुमने कभी सुना है कि कोई गूंगा आदमी नेता हुआ है? अंधा आदमी आसानी से नेता हो सकता है। कोई कठिनाई नहीं है। कभी-कभी तो वह बड़ा नेता हो जाता है, क्योंकि उसकी आंखों की उर्जा भी उसके कानों को मिल जाती है। कोई गूंगा आदमी जीवन के किसी क्षेत्र में नेता नहीं हो सकता है। उसमे संवाद की क्षमता ही नहीं है। वह समाजिक नहीं हो सकता।

समाज भाषा है। सामाजिक जीवन के लिए, संबंध के लिए भाषा आधारभूत है। भाषा को छोड़कर तुम अकेले पड़ जाते हो। पृथ्वी करोड़ो लोगों से भरी हो; लेकिन भाषा के खोते ह तुम अकेले हो जाओगे।

मेहर बाबा निरंतर चालीस वर्षों तक मौन में रहे। मौन में वे क्या करते थे? सच तो यह है कि मौन में तुम कुछ नहीं कर सकते। क्योंकि हर कृत्य किसी न किसी भांति दूसरों से संबंधित होता है। यदि कल्पना में भी तुम कुछ करोगे तो तुम्हें दूसरों को कल्पित करना होगा। तुम अकेले नहीं कर सकते हो। अगर तुम बिलकुल अकेले हो तो कृत्य असंभव हो जाएगा। करना दूसरों से संबंधित है। यदि तुम भीतर भाषा छोड़ दो तो सब करना समाप्त हो जाता है। तुम तो हो, लेकिन तुम कुछ कर नहीं रहे हो।

कभी-कभी मेहर बाबा अपने शिष्यों को लिखकर सूचित करते थे कि अमुक तारीक को मैं अपना मौन तोड़ने जा रहा हूं। लेकिन उस दिन के आने पर वे मौन नहीं तोड़ते थे। यह सिलसिला चालीस वर्षों तक चलता रहा। और तब वे मौन ही मर गए। बात क्या थी। वे क्यों कहते थे कि मैं अमुक वर्ष, माह और दिन को अपना मौन तोडूगा। लेकिन उसे तोड़ नहीं पाते थे? उन्हें अपना यह कार्यक्रम क्यों बार-बार स्थगित करना पड़ता था। उनके भीतर क्या हो रहा था? वे अपना वचन क्यों नहीं पूरा कर पाते थे?

अगर तुम लंबे अरसे के लिए मौन में रह जाओ, उसे जान लो तो तुम्हारे लिए ध्वनि के जगत में लौटना असंभव हो जाएगा। एक नियम है जिसका कि पालन मेहर बाबा ने नहीं किया और इसीलिए वे मौन से नहीं लौट सके। नियम यह है कि किसी को तीन साल से ज्यादा समय तक मौन में नहीं रहना चाहिए। अगर तुम उस सीमा को पार कर जाओ तो तुम ध्वनि के जगत में फिर वापस नहीं आ सकते। तुम प्रयेत्न कर सकते हो। लेकिन यह असंभव है। ध्वनि से मौन में जाना आसान है। लेकिन मौन से ध्वनि में लौटना बहुत कठिन है। तीन वर्षो के बाद बहुत बातें कठिन हो जाती है। तब मैकेनिज्म वही नहीं रह जाता है। पुराने ढंग से काम नहीं कर सकता है। उसको निरंतर उपयोग में लाना जरूरी है। कोई ज्यादा से ज्यादा तीन साल मौन रह सकता है। उससे आगे उसे खींचने से ध्वनि और शब्द पैदा करने वाला मैकेनिज्म बेकार हो जाता है। वह मर जाता है।

दूसरी बात यह है कि अपने साथ अकेले रहते-रहते आदमी इतना मौन और शांत हो जाता है कि अब उसके लिए बातचीत बहुत दुखदायी हो जाती है। तब किसी से बातचीत करने में उसे लगेगा कि मैं दीवार से बात कर रहा हूं। क्योंकि जो व्यक्ति इतने दिन मौन रह गया है वह जानता है कि तुम उसे समझ पाओगे। वह यह भी जानता है कि मैं वही नहीं कह रहा हूं जो कहना चाहता हूं। पूरी बात ही समाप्त हो गई। इतने गहरे मौन के बाद अब वह ध्वनियों के जगत में नहीं लौट सकता है।

यही कारण है कि मेहर बाबा कोशिश करने के बावजूद फिर बोल नहीं पाए। और वे कुछ कहना चाहते थे; उनके पास कुछ कहने योग्य भी था। लेकिन नीचे तल पर उतरने का यंत्र ही व्यर्थ हो चला था। ऐसे जो वे कहना चाहते थे उसे वे कहे बिना चले गए।

यह समझना उपयोगी होगा। जो भी करो, उसके विपरीत भी करते चलो। विपरीत में गति करना मत भूलों। कुछ घंटों के लिए मौन रहो और बातचीत करो। किसी एक ही ढांचे में बंद मत हो जाओ। तब तुम अधिक जीवित और गतिमान रहोगे। कुछ दिनों तक ध्यान करो, और फिर उसे अचानक बंद कर दो। और कुछ ऐसा करो की जिससे तनाव निर्मित हो सके। तब फिर ध्यान में उतर जाओ। विपरीत छोरों के बीच गति करते रहो; उससे तुम ज्यादा जीवित और गति मान रहोगे। बंध मत जाओ। अटक मत जाओ। अटक मत जाओ। एक बार अटक गए तो तुम दूसरे छोर पर गति नहीं कर पाओगे। और दूसरे छोर पर गति करना ही जीवन है। यह गति गई कि तुम भी गए। तब तुम गुर्दा हो। यह गति बहुत शुभ है।

गुरजिएफ अपने शिष्यों को आकस्मिक बदलाहट करना सिखाता था। पहले वह उपवास पर जोर देता था। और फिर कहता था कि जितना खा सको खाओ। और फिर उपवास करवाता था। कुछ शिष्यों से वह कहता था लगातार कुछ दिन-रात जागते रहो। और फिर कुछ दिन-रात सोते रहो।

ध्रुवीय विपरीतताओं के बीच गति करते रहने से जीवंतता और गति उपलब्ध होती है।

''या कानों में अंगुलि डालकर नांदों के नाद, अनाहत को सुनो।''

एक ही विधि में दो विपरीत बातें कही गई है।

''ध्वनि के केंद्र में स्नान करो। मानो किसी जलप्रपात की अखंड ध्वनि में स्नान कर रहे हो।'' यक एक अति है। ''या कानों में अंगुलि डालकर नांदों के नाद को सुनो।'' यह दूसरी अति है। एक हिस्सा कहता है कि अपने केंद्र पर पहुंचने वाली ध्वनियों को सुनो और दूसरा हिस्सा कहता है कि सब ध्वनियों को बंद कर ध्वनियों की ध्वनि को सुनो। एक ही विधि में दोनों को समाहित करने का एक विशेष करण है। ताकि तुम एक छोर से दूसरे छोर पर गति कर सको।

यहां ''या'' शब्द चुनाव करने को नहीं कहता है कि इनमें से किसी एक को प्रयोग करना है। नहीं, दोनों को प्रयोग करो। इसीलिए एक विधि में दोनों को समाविष्ट किया गया है। पहले कुछ महीने तक एक का प्रयोग करो और फिर कुछ महीने बाद दूसरे का प्रयोग करो। इस प्रयोग से तुम ज्यादा जीवंत होगे। और तुम दोनों छोरों को जान लोगे। और अगर तुम दोनों छोरों के बीच आसानी से डोलते रहो तो तुम सदा-सर्वदा युवा बने रहोगे। जो लोग सदा एक ही छोर से अटके रहते है वह बूढे हो जाते है। और मर जाते है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—25

तंत्र-सूत्र—विधि—39 (ओशो)

ध्वनि-संबंधी तीसरी विधि:

''ओम जैसी किसी ध्वनि का मंद-मंद उच्चरण करो।

''ओम जैसी किसी ध्वनि का मंद-मंद उच्चरण करो। जैस-जैसे ध्वनि पूर्णध्वनि में प्रवेश करती है। वैसे-वैसे तुम भी।''

''ओम जैसी किसी ध्वनि का मंद-मंद उच्चारण करो।''
उदाहरण के लिए ओम को लो। यह एक आधारभूत ध्वनि है। उ, इ और म, ये तीन ध्वनियां ओम में सम्मिलित है। ये तीनों बुनियादी ध्वनियां है। अन्य सभी ध्वनियां उनसे ही बनी है। उनसे ही नकली है, या उनकी ही यौगिक ध्वनियां है। ये तीनों बुनियादी है। जैसे भौतिकी के लिए इलेक्ट्रॉन, न्यूट्रॉन और प्रोटोन बुनियादी है। इस बात को गहराई से समझना होगा।

गुरजिएफ ने तीन के नियम की बात की है। वह कहता है कि आत्यंतिक अर्थ में अस्तित्व एक है। आत्यंतिक अर्थ में परम अर्थ में एक ही नियम है। लेकिन यह परम है। और जो कुछ हम देखते है वह सापेक्ष है। वह परम नहीं है। वह परम तो सदा प्रच्छन्न है। छिपा है। हम उसे देख नहीं सकते। क्योंकि जैसे ही हमें कुछ दिखाई पड़ता है, वह तीन में विभाजित हो जाता है। वह तीन में, द्रष्टा, दृश्य और दर्शन में बंट जाता है।

मैं तुम्हें देख रहा हूं, तो मैं हूं, तुम हो और हम दोनों के बीच दर्शन का, ज्ञान का संबंध है। प्रक्रिया तीन में बंट गई। परम तीन में विभाजित हो गया। जिस क्षण वह ज्ञान बनता है उसी क्षण वह तीन में बंट जाता है। अज्ञात वह एक है; ज्ञात होते ही वह तीन हो जाता है। ज्ञात सापेक्ष है; अज्ञात परम है। परम के संबंध में हमारी चर्चा भी, हमारी बातचीत भी परम नहीं है। क्योंकि ज्यों ही हम उसे परम कहकर पुकारते है, वह ज्ञात हो जात है। जो भी हम जानते है वह सापेक्ष है; यह परम शब्द भी सापेक्ष हो जाता है।

यही कारण है कि लाओत्से जोर देकर कहता है कि सत्या कहा नहीं जा सकता है। जैसे ही तुम उसे कहते हो वह असत्य हो जाता है। कारण यह है कि शब्द देते ही वह सापेक्ष हो जाता है। हम जो भी शब्द दें, चाहे सत्य, परम, परब्रह्म या ताओ कहें, बोलते ही वह सापेक्ष हो जाता है। बोलते ही वह असत्य हो जाता है। एक तीन में बंट जाता है।

तो गुरजिएफ कहता है कि जिस जगत को हम जानते है उसके लिए तीन कास नियम आधारभूत है। अगर हम गहरे में उतरें तो पाएंगे—पाएंगे ही—कि प्रत्येक चीज तीन में बंधी है। इसे ही तीन का नियम कहते है। ईसाई इसे ट्रिनिटी कहते है, जिसमे ईश्वर पिता, जीसस पुत्र और पवित्र आत्मा सम्मिलित है। भारतीय इसे त्रिमूर्ति कहते है, जिसमें ब्रहमा, विष्णु, महेश के मुख एक ही सिर में है। और अब भौतिक शास्त्र कहता है कि अगर हम पदार्थ का विश्लेषण करते हुए उसके भीतर प्रवेश करें तो पदार्थ भी तीन में टूट जाएगा—इलेक्ट्रॉन, न्यूट्रॉन और प्रोटोन।

वैसे ही कवि कहते है कि यदि हम मनुष्य के सौंदर्य-बोध की, उसके भाव की गहराई में उतरे तो वहां भी तीन ही मिलेंगे। सत्य, शिव और सुंदर। मानवीय भावना भी तीन में बंटी है। और रहस्यवादी कहते है कि अगर हम समाधि का विश्लेषण करें तो वहां भी सच्चिदानंद की त्रयी है—सत, चित और आनंद ही त्रयी है। मनुष्य की पूरी चेतना, चाहे वह जिस किसी आयाम में गति करे, तीन के नियम पर पहुंच जाती है।

और तीन के नियम का प्रतीक है। अ, उ और म—ये तीन बुनियादी ध्वनियां है। तुम उन्हें आणविक ध्वनियां भी कह सकते हो। जिन्हें ओम में सम्मिलित कर दिया है। ओम परम के, परमात्मा के अत्यंत निकट है; उसके पीछे ही परम का अज्ञात का वास है। जहां तक ध्वनियों का संबंध है, ओम उनका अंतिम पड़ाव है। अगर तुम ओम अंतिम ध्वनि है। ये तीन अंतिम है। ये अस्तित्व की सीमा बनाती है; इन तीन के पार अज्ञात में परम में प्रवेश है।

भौतिकविद कहते है कि अब हम इलेक्ट्रॉन पर पहुंचकर अंतिम सीमा पर पहुंच गए है; क्योंकि इलेक्ट्रॉन को पदार्थ नहीं कहा जा सकता। ये इलेक्ट्रॉन, ये विद्युत-अणु दृश्य नहीं है; उनमें पदार्थ तत्व नहीं है। और उन्हें अपदार्थ भी नह कहा जा सकता; क्योंकि सब पदार्थ उनसे ही बनता है। और अगर वह न पदार्थ है और न अपदार्थ है तो फिर उसे क्या कहा जाए। किसी ने भी इलेक्ट्रॉन को नहीं देखा। उनका अनुमान भर होता है। गणित के आधार पर माना गया है कि वे है। उनका प्रभाव जाना गया है; लेकिन उन्हें देखा नहीं गया है। और हम उनके आगे नहीं जा सकते; तीन का नियम आखिरी है। और अगर तुम तीन के नियम के पार जाते हो तो तुम अज्ञात में प्रवेश कर जाते हो। तब कुछ कहना असंभव है। इलेक्ट्रॉन के बारे में बहुत कम कहा जा सकता है।

जहां तक ध्वनि का संबंध है, ओम आखिरी है; तुम ओम के आगे नहीं जा कसते। यही कारण है कि ओम का इतना अधिक उपयोग किया गया। भारत में ही नहीं, सारी दुनियां में ओम का व्यवहार होता आया है। ईसाइयों और मुसलमानों का आमीन ओम का ही दूसरा रूप है। आमीन की बुनियादी ध्वनियां भी वही है। अंग्रेजी के शब्द ओमनीप्रेजेंट, में भी वही है। ओमनीपोटैंट का अर्थ है कि जो परम शक्तिशाली हो।

ईसाई और मुसलमान तो अपनी प्रार्थना के अंत में आमीन कहते है; लेकिन हिंदुओं ने ओम का एक पूरा विज्ञान ही निर्मित किया है। वह ध्वनि का विज्ञान है; वह ध्वनि के अतिक्रमण का विज्ञान है। और अगर मन ध्वनि है तो अ-मन अवश्य निध्वनि होगा। या पूर्णध्वनि होगा। दोनों का एक ही अर्थ है।

इसे ठीक से समझ लेना चाहिए। परम को विधायक या नकारात्मक, किसी भी ढंग से कहा जा सकता है। सापेक्ष का दोनों ढंग से कहना होगा, विधायक और नकारात्मक दोनों ढंग से; क्योंकि वह द्वैत है। लेकिन जब तुम परम को अभिव्यक्त देते चलोगे। तो या तो तुम विधायक शब्द प्रयोग करोगे या नकारात्मक। मनुष्य की भाषा में दोनों तरह के शब्द है। विधायक और नकारात्मक दोनों है। जब तुम परम को, अनिर्वचनीय को बताने चलोगे तो तुम्हें कोई शब्द उपयोग करना होगा। जो प्रयोगात्मक हो। यह मन-मन पर निर्भर है।

सूत्र कहता है : ''ओम जैसी किसी ध्वनि का मंद-मंद उच्चारण करो। जैसे-जैसे ध्वनि पूर्णध्वनि में प्रवेश करती है, वैसे-वैसे तुम भी।''

''ओम जैसी किसी ध्वनि का मंद-मंद उच्चारण करो।''

ध्वनि का उच्चारण एक सूक्ष्म विज्ञान है। पहले तुम्हें उसका उच्चारण जोर से करना है, बाहर-बाहर करना है; ताकि दूसरे सुन सकें। जोर से उच्चारण शुरू करना अच्छा है। क्यों? क्योंकि जब तुम जोर से उच्चार करते हो तो तुम भी उसे साफ-साफ सुनते हो। जब तुम कुछ कहते हो तो दूसरे से कहते हो; वह तुम्हारी आदत बन गई है। जब तुम बात करते हो तो दूसरों से करते हो। इसलिए तुम अपने को भी तभी सुनते हो जब दूसरों से बात करते हो। तो एक स्वाभाविक आदत से आरंभ करना अच्छा है।

ओम ध्वनि का उच्चार करो, और फिर धीरे-धीरे उस ध्वनि के साथ लयबद्ध अनुभव करो। जब ओम का उच्चार करो तो उससे भर जाओ। और सब कुछ भूलकर ओम ही बन जाओ। ध्वनि ही बन जाओ। और ध्वनि बन जाना बहुत आसान है; क्योंकि ध्वनि तुम्हारे शरीर में तुम्हारे मन में, तुम्हारे समूचे स्नायु संस्थान में गूंजने लग सकती है। ओम की अनुगूँज को अनुभव करो। उसका उच्चार करो और अनुभव करो कि तुम्हारा सारा शरीर उससे भर गया है। शरीर का प्रत्येक कोश उससे गुंज उठा है।

उच्चार करना लयबद्ध होना भी है। ध्वनि के साथ लयबद्ध होओ। ध्वनि ही बन जाओ। और तब तुम अपने और ध्वनि के बीच गहरी लयबद्धता अनुभव करोगे। तब तुममें उसके लिए गहरा अनुराग पैदा होगा। यह ओम की ध्वनि इतनी सुंदर और संगीतमय है। जितना ही तुम उसका उच्चार करोगे उतने ही तुम उसकी सूक्ष्म मिठास से भर जाओगे। ऐसी ध्वनियां है जो बहुत तीखी है। और ऐसी ध्वनियां है जो बहुत मीठी है। ओम बहुत ही मीठी ध्वनि है। और शुद्धतम ध्वनि है। उसका उच्चार करो और उससे भर जाओ।

जब तुम ओम के साथ लयबद्ध अनुभव करने लगोगे तो तुम उसका जोर से उच्चार करना छोड़ सकते हो। फिर होठो को बंद कर लो और भीतर ही भीतर उच्चार करो। लेकिन यह भीतर उच्चर पहले जोर से करना है। शुरू में यह भीतर उच्चार भी जोर से करना है। ताकि ध्वनि तुम्हारे समूचे शरीर में फैल जाए। उसके हरेक हिस्से को, एक-एक कोशिका को छुए। उससे तुम नव जीवन प्राप्त करोगे। वह तुम्हें फिर से युवा और शक्तिशाली बना देगी।

तुम्हारा शरीर भी एक वाद्य-यंत्र है; उसे लयबद्धता की जरूरत है। जब शरीर की लयबद्धता टूटती है तो तुम अड़चन में पड़ते हो। और यही कारण है कि जब तुम संगीत सुनते हो तो तुम्हें अच्छा लगाता है। तुम्हें अच्छा क्यों लगता है? संगीत थोड़े से लय-ताल के अतिरिक्त क्या है? जब तुम्हारे चारों तरफ संगीत होता है तो तुम अच्छा क्यों महसूस करते हो। और शोरगुल

और अराजकता के बीच तुम्हें बेचैनी क्यों होती है? कारण यह है कि तुम स्वयं संगीतमय हो। तुम वाद्य-यंत्र हो; और वह यंत्र प्रतिध्वनि करता है।

अपने भीतर ओम का उच्चार करो और तुम्हें अनुभव होगा कि तुम्हारा समूचा शरीर उसके साथ नृत्य करने लगा है। तब तुम्हें महसूस होगा कि तुम्हारा सारा शरीर उसमें स्नान कर रहा है; उसका पोर-पोर इस स्नान से शुद्ध हो रहा है। लेकिन जैसे-जैसे इसकी प्रतीति गहरी हो, जैसे-जैसे यह ध्वनि ज्यादा से ज्यादा तुम्हारे भीतर प्रवेश करे, वैसे-वैसे उच्चार को धीमा करते जाओ। क्योंकि ध्वनि जितनी धीमी होगी, वह उतनी ही गहराई प्राप्त करेंगी। वह होम्योपैथी की खुराक जैसी है। जितनी छोटी खुराक उतनी ही गहरी उसकी पैठ। गहरे जाने के लिए तुम्हें सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होता जाना होगा।

भोंडे और कर्कश स्वर तुम्हारे ह्रदय में नहीं उतर सकते। वे तुम्हारे कानों में तो प्रवेश करेंगे। ह्रदय में नहीं। ह्रदय का मार्ग इतना संकरा है और ह्रदय स्वयं इतना कोमल है कि सिर्फ बहुत धीमे, लयपूर्ण और सूक्ष्म स्वर ही उसमे प्रवेश पा सकते है। और जब तक कोई ध्वनि तुम्हारे ह्रदय तक न जाए तब तक मंत्र पूरा नहीं होता। मंत्र तभी पूरा होता है जब उसकी ध्वनि तुम्हारे ह्रदय में प्रवेश करे, तुम्हारे अस्तित्व के गहनत्म, केंद्रीय मर्म को स्पर्श करे। इसलिए उच्चार को धीमा ओ धीमा करते चलो।

और इन ध्वनियों को धीमा और सूक्ष्म बनाने के और भी कारण है। ध्वनि जितनी सूक्ष्म होगी उतने ही तीव्र बोध की जरूरत होगी उसे अनुभव करने के लिए। ध्वनि जितनी भोंडी होगी उतने ही कम बोध की जरूरत होगी। वह ध्वनि तुम पर चोट करने क लिए काफी है। तुम्हें उसका बोध होगा ही। लेकिन वह हिंसात्मक है। अगर ध्वनि संगीत पूर्ण लयपूर्ण और सूक्ष्म हो तो तुम्हें उसे अपने भीतर सुनना होगा। और उसे सुनने के लिए तुम्हें बहुत सजग, बहुत सावधान होना होगा। अगर तुम सावधान न रहे तो तुम सो जा सकते हो। और तब तुम पूरी बात ही चूक जाओगे।

किसी मंत्र या जप के साथ, ध्वनि के प्रयोग के साथ यही कठिनाई है कि वह नींद पैदा करता है। वह एक सूक्ष्म ट्रैंक्विलाइजर है, नींद की दवा है। अगर तुम किसी ध्वनि को निरंतर दोहराते रहे और उसके प्रति सजग न रहे तो तुम सो जाओगे। क्योंकि तब यांत्रिक पुनरूक्ति हो जाती है। तब ओम-ओम यांत्रिक हो जाता है। और पुनरूक्ति ऊब पैदा करती है। नींद के लिए ऊब बुनियादी तौर से जरूरी है; तुम ऊब के बिना नहीं सो सकते। अगर तुम उत्तेजित हो तो तुम्हें नींद नहीं आएगी।

यही कारण है कि आधुनिक मनुष्य धीरे-धीरे नींद खो बैठा है। कारण क्या है? इतनी उत्तेजना है जितनी पहले कभी नहीं थी। पुरानी दुनियां में जीवन ऊब से भरा होता था। पुनरूक्ति की ऊब से भरा होता था। आज भी अगर तुम कहीं पहाड़ियों में छिपे किसी गांव में चले जाओ तो वहां का जीवन ऊब से भरा मिलेगा। हो सकता है, वह ऊब तुम्हें न महसूस हो; क्योंकि तुम वहां का जीवन ऊब से भरा मिलेगा। हो सकता है, हो सकता है वह ऊब तुम्हें न महसूस हो। क्योंकि तुम वहां रहते तो नहीं वहां केवल छुट्टियों के लिए गये हो। ये उत्तेजना बंबई के कारण है। उन पहाड़ियों के कारण नहीं। वे पहाडियाँ बिलकुल उबाने वाली है। जो वहां रहते है वे ऊबे है और सोए है। एक ही चीज, एक ही चर्चा है, जिसमें कोई उत्तेजना नहीं, कोई बदलाहट नहीं। वहां मानो कुछ होता ही नहीं; वहां समाचार नहीं बनते। चीजें वैसे ही चलती रहती है। जैसे सदा से चलती रही है। वे वर्तुल में घूमती रहती है। जैसे ऋतुऐ घूमती है। प्रकृति घूमती है, दिन-रात वर्तुल में घूमते रहते है। वैसे ही गांव में, पुराने गांव में जीवन वर्तुल में घूमता है। यही वजह है कि गांव वालों को इतनी आसानी से नींद आ जाती है। वहां सब कुछ उबाने वाला है।

आधुनिक जीवन उत्तेजनाओ से भर गया है; वहां कुछ भी दोहराता नहीं है। वहां सब कुछ बदलता रहता है, नया होता रहता है। जीवन की भविष्यवाणी वहां नहीं की जा सकती। और तुम इतने उत्तेजना से भरे हो कि नींद नहीं आती। हर रोज तुम नयी फिल्म देख सकते हो, हर रोज तुम नया भाषण सुन सकते हो। हर रोज एक नयी किताब पढ़ सकते हो। हर रोज कुछ न कुछ नया उपलब्ध है। यह सतत उत्तेजना जारी है। जब तुम सोने को जाते हो तब भी उत्तेजना मौजूद रहती है। मन जागते रहना चाहता है। उसे सोना व्यर्थ मालूम होता है।

अगर तुम किसी विशेष ध्वनि को दोहराते रहो तो वह तुम्हारे भीतर वर्तुल निर्मित कर देती है। उससे ऊब पैदा होती है। उससे नींद आती है। यही कारण है कि पश्चिम में महेश योगी का टी. एम. भावतित ध्यान बिना दवा का ट्रैंक्विलाइजर माना जाने लगा है। वह इसलिए क्योंकि वह मात्र मंत्र-जाप है। लेकिन अगर मंत्र-जाप केवल जाप बन जाए, तुम्हारे भीतर कोई सावचेत न रहे तो जाप को सुनता हो, तो उससे नींद तो आ सकती है। लेकिन और कुछ नहीं हो सकता। ट्रैंक्विलाइजर के रूप में वह ठीक है; अगर तुम्हें अनिद्रा का रोग है तो टी. एम. ठीक है। उसे सहायता मिलेगी।

तो ओम के उच्चार को सजग आंतरिक कान से सुनो। और तब तुम्हें दो काम करने है। एक और मंत्र के स्वर को धीमे से धीमा करते जाओ, उसको मंद और सूक्ष्म करते जाओ और दूसरी और उसके साथ-साथ ज्यादा से ज्यादा सजग होते जाओ। जैसे-जैसे ध्वनि सूक्ष्म होगी। तुम्हें अधिकाधिक सजग होना होगा। अन्यथा तुम चूक जाओगे।

यह विधि है: ''ओम जैसी किसी ध्वनि का मंद-मंद उच्चारण करो। जैसे-जैसे ध्वनि पूर्णध्वनि में प्रवेश करती है, वैसे-वैसे तुम भी।''

और उस क्षण की प्रतीक्षा करो जब ध्वनि इतनी सूक्ष्म , इतनी आणविक हो जाए कि अब किसी भी क्षण नियमों के जगत से, तीन के जगत से एक के जगत में, परम के जगत में छलांग ले ले। तब तक प्रतीक्षा करो। ध्वनि का विलीन हो जाना—यह मनुष्य के लिए सर्वाधिक सुंदर अनुभव है। तब तुम्हें अचानक पता चलता है कि ध्वनि कही विलीन हो गई। जरा देर पहले तक तुम ओम-ओम की सूक्ष्म ध्वनि को सुन रहे थे और अब वह बिलकुल नहीं है। तुम एक के जगत में प्रवेश कर गए; तीन का जगत जाता रहा। तंत्र इसे पूर्णध्वनि कहता है। बुद्ध इसे ही निर्ध्वनि कहते है।

यह एक मार्ग है—सर्वाधिक सहयोगी, सर्वाधिक आजमाया हुआ। इस कारण ही मंत्र इतने महत्वपूर्ण हो गए। ध्वनि मौजूद ही है और तुम्हारा मन ध्वनि से भरा है; तुम उसे जंपिग बोर्ड बना सकते हो।

लेकिन इस मार्ग की अपनी कठिनाइयां है। पहली कठिनाई नींद है। जिसे भी मंत्र का उपयोग करना हो उसे इस कठिनाई के प्रति सजग होना चाहिए। नींद ही बाधा है। यह उच्चार इतना पुनरूक्ति भरा है। इतना लयपूर्ण है, इतना उबाने वाला है। कि नींद का आना लाजिमी है। तुम नींद के शिकार हो सकते हो। और यह मत सोचो कि तुम्हारी नींद ध्यान है। नींद ध्यान नहीं है। नींद अपने आप में अच्छी है। लेकिन सावधान रहो। नींद के लिए ही अगर मंत्र का उपयोग करना है तो बात अलग है। लेकिन अगर उसका उपयोग आध्यात्मिक जागरण के लिए करना है तो नींद से सावधान रहना जरूरी है। जो मंत्र का उपयोग साधना की तरह करते है उनके लिए नींद दुश्मन है। और यह नींद बहुत आसानी से घटती है और बहुत सुंदर है।

यह भी स्मरण रहे कि यह और ही तरह की नींद है। यह सामान्य नींद नहीं है। मंत्र से पैदा होने वाली नींद सामान्य नींद नहीं है। यह और ही तरह की नींद है। यूनानी उसे ही हिप्नोस कहते है; उससे ही ''हिप्नोसिस'' शब्द बना है। जिसका अर्थ सम्मोहन होता है। योग उसे योग-तंद्रा कहता है। एक विशेष नींद, जो सिर्फ योगी को घटित होती है। साधारणजन को नहीं। यह हिप्नोस है, सम्मोहन-निद्रा है; यह आयोजित है, सामान्य नहीं है। और भेद बुनियादी है, यह ठीक से समझ लेना चाहिए।

अनेक मंदिरों में, चर्चों में लोग सो जाते है। धर्म-चर्चा सुनते हुए लोग सो जाते है। उन्होंने उन शास्त्रों को इतनी बार सुना है कि उन्हें ऊब होने लगती है। उस चर्चा में अब कोई उत्तेजना न रही। पूरी कथा उन्हें मालूम है। तुमने रामायण इतनी बार सूनी है कि तुम मजे से सो सकते हो। और नींद में ही इसे सून सकते हो। और तुम्हें कभी ऐसा भी नहीं लगेगा कि तुम सो रहे थे। क्योंकि तुम कुछ चुकोगे भी नहीं। कथा से तुम इतने परिचित हो।

उपदेशकों की आवाज गहन रूप से उबाने वाली होती है। नींद पैदा करने वाली होती है। अगर एक ही सुर में तुम कुछ बोलते रहो तो उससे नींद पैदा होगी। अनेक मानस्विद अपने अनिद्रा के रोगियों को धार्मिक चर्चा सुनने की सलाह देते है। उससे नींद

में जाना सरल है। जब भी तुम ऊब से भरोंगे तो तुम सो जाओगे। लेकिन यह नींद सम्मोह है, यह नींद योग-तंद्रा है। इसमें भेद क्यों है?

साधारण नींद में प्रश्न करने वाला मन मौजूद रहता है। वह सौ नहीं जाता है। सम्मोहन में तुम्हारा प्रश्न करने वाला मन सो जाता है। लेकिन तुम नहीं सोए होते हो। यही कारण है कि सम्मोहन विद तुम्हें जो कुछ कहता है उसे तुम सुन पाते हो और तुम उसके आदेश का पालन करते हो। नींद में तुम सुन नहीं सकते; तुम तो सोए हो। लेकिन तुम्हारी बुद्धि नहीं सोती है। इसलिए अगर कुछ ऐसी चीज हो जो तुम्हारे लिए घातक हो सकती है। तो तुम्हारी बुद्धि तुम्हारी नींद को तोड़ देगी।

एक मां अपने बच्चे के साथ सोयी है। वह मां और कुछ नहीं सुनेगा, लेकिन अगर उसका बच्चा जरा सी भी आवाज करेगा, जरा भी हरकत करेगा तो वह तुरंत जाग जाएगी। अगर बच्चे को जरा सी बेचैनी होगी तो मां जाग जायेगी। उसकी बुद्धि सजग है; तर्क करने वाला मन जागा हुआ है।

साधारण नींद में तुम सोए होते हो; लेकिन तुम्हारी तर्क-बुद्धि जागी होती है। इसीलिए कभी-कभी नींद में भी पता चलता है कि वे सपने है। हां, जिस क्षण तुम समझते हो कि यह स्वप्न है, तुम्हारा स्वप्न टूट जाता है। तुम समझ सकते हो कि यह व्यर्थ है; लेकिन ऐसी प्रतीति के साथ ही स्वप्न टूट जाता है। तुम्हारा मन सजग है; उसका एक हिस्सा सतत देख रहा है। लेकिन सम्मोहन या योग तंद्रा से द्रष्टा सो जाता है।

यही उन सबकी समस्या है। जो निर्ध्वनि या पूर्णध्वनि में जाने के लिए, पार जाने के लिए ध्वनि की साधना करते है। उन्हें सावधान रहना है। कि मंत्र आत्मा सम्मोहन न पैदा करे। तो तुम क्या कर सकते हो।

तुम सिर्फ एक चीज कर सकते हो। जब भी तुम मंत्र का उपयोग करते हो, मंत्रोच्चार करते हो, तो सिर्फ उच्चार ही मत करो, उसके साथ-साथ सजग होकर उसको सुनो भी। दोनों काम करो: उच्चार भी करो और सुनो भी। उच्चार और श्रवण दोनों करना अन्यथा खतरा है। अगर सचेत होकर नहीं सुनते हो तो उच्चार तुम्हारे लिए लोरी बन जाएगा। और तुम गहन नींद में सो जाओगे। वह नींद बहुत अच्छी होगी। उस नींद से बाहर आने पर तुम ताजे और जीवंत हो जाओगे। तुम अच्छा अनुभव करोगे। लेकिन यह असली चीज नहीं है। तुम तब असली चीज ही चूक गए।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—25